हिन्दी

कौलावली निर्णय

'चण्डी' वर्ष ५५ :: छठा विशेषाङ्क

हिन्दी कौलावली निर्णय

*****

सम्पादक

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

*****

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीदेवी मार्ग, प्रयाग-राज (उ०प्र०)२११००

दूरभाष : ६६२८८३

प्रकाशक
कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपीबाग, प्रयाग-२११००६
दूरभाषः ६०६७८३

दूसरा संस्करण, भैरवाष्टमी २०५३ वि०
(३ दिसम्बर, १९९६)

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक
परावाणी प्रेस, प्रयाग-२११००६
टाइप सेटिङ्ग
ए०\एस० लेजर प्वाइन्ट, कटरा
दूरभाषः ६०५७६५
आफसेट प्रिंटिङ्ग
एकेडमी प्रेस इलाहाबाद-६

विषय-सूची

पहला उल्लास ...१-६
१. विषय-प्रवेश ...१
२. प्रात-कृत्य ...४
दूसरा उल्लास ७-१९
१. स्नान ...७
२. सन्ध्या-वन्दन ...८
३. पूजा-स्थान-निर्णय ...९
४. याग-स्थान में प्रवेश ...९
५. भूमि-शुद्धि ...१०
६. आसनादि-स्थान ...१०
७. पुष्पादि-निर्णय ...१२
८. शक्ति-पूजा ...१३
९. सम्विदा-ग्रहण ...१३
१०.पूजा-प्रारम्भ ...१५
११.प्राणायाम ...१६
१२.भूत-शुद्धि ...१७
१३.जीव-न्यास ...१८
तीसरा उल्लास ...२०-२७
१. अन्तर्यजन ...२०
२. बहिर्यजन ...२६
चौथा उल्लास ...२८-३५
१. देव-पूजा-भाव ...२८
२. पंञ्च-तत्व ...२८
पाँचवाँ उल्लास ...३६-३९
१. मांस-शोधन ...३६
२. मत्स्य-शोधन ...३७
३. मुद्रा-शोधन ...३७
४. कुल-द्रव्य-शोधन ...३८
५. अनुकल्प ...३८
छठा उल्लास ...४०-४८
१. विशेषार्घ्य-पात्र ...४०
२. अन्यान्य पात्र ...४३
३. बलि-पञ्चक ...४६
सातवाँ उल्लास ...४९-६१
१. पूजारम्भ ...४९
२. उपचार-विधान ...५०
३. बलि-दान ...५६
४. मन्त्र-जप ...५७
५. नित्य-होम ...५९
६. विसर्जन ...६१
आठवाँ उल्लास ...६२-७१
१. अन्नपूर्णा-पूजन ...६२
२. कौल-लक्षण ...६२
३. कुल-चक्रार्चन ...६३
नवाँ उल्लास ...७२-७५
१. पूजा-काल ...७२
२. पूजा-स्थान ...७२
३. शिवा-बलि ...७३
४. कुल-पूजा ...७४
दसवाँ उल्लास ...७६-८१
१.समयाचार ...७६

ग्यारहवाँ उल्लास ...८२-८६
१.दिव्य-भाव ...८२
२.वीर-भाव ...८४
३.पशु-भाव ...८५
बारहवाँ उल्लास ...८७-१००
१. कर-माला ...८७
२. अक्ष-मालादि ...८७
३. माला-संस्कार ...८८
४. वर्ण-माला ...८२
५. मन्त्र-प्रतिष्ठा ...८३
६. पुरश्चरण-विधि ...८४
तेरहवाँ उल्लास ...१०१-११७
१. कुण्ड-निर्माण ...१०१
२. स्रुक् और स्रुवादि-रचना ...१०४
३. कुण्ड-संस्कार ...१०५
४. हवन-विधि ...१०७
५. तर्पण ...११५
६. अभिषेक ...११६
७. ब्राह्मण-भोजन ...११७
चौदहवाँ उल्लास ...११८-१२४
१. पुरश्चरण की दूसरी विधि ...११९
२. पुरश्चरण की अन्य विधियाँ ...१२३
पन्द्रहवाँ उल्लास ...१२५-१३१
१. कुमारी-पूजा ...१२५
२. प्रमदा-पूजन ...१२७
३. समयाचार-स्तव ...१२७
४. नैमित्तिक पूजा ...१२९
सोलहवाँ उल्लास ...१३२-१३६
१. शक्ति-दीक्षा ...१३२
२. काम्य-पूजन ...१३३
३. त्रिपुरा-बीज-साधन ...१३४
सत्रहवाँ उल्लास ...१३७-१४०
१. मन्त्र-शिखा ...१३७
२. सिद्धि-दायिनी पूजा ...१३८
अठारहवाँ उल्लास ...१४१-१४२
१. सिद्धि-चिह्न ...१४१
उन्नीसवाँ उल्लास ...१४३-१४४
१. षट्-कर्म ...१४२
बीसवाँ उल्लास ...१४५-१४६
१. चण्डी-पाठ ...१४५
इक्कीसवाँ उल्लास ...१४७
१. अवधूत-क्रम ...१४७
प्रकाशकीय ...१४८

❋ ❋ ❋

पहला उल्लास

१—विषय-प्रवेश

सिद्धों से निरन्तर सेवित श्री गुरु के युगल पाद-पद्मों को नमस्कार करके शास्त्रों के परिभाव एवं मोक्ष के जनक कौलावली-निर्णय को, जो कुलवर्धक तथा पुण्यात्मा कौलिकों के द्वारा मनोहर भावों से सदा सेवित और शिवा-शिव दोनों के वाक्यानुसार वाञ्छा कल्पतरु तथा परदेवता के चरणाब्जों का एक ही प्रसादालय है, उसको महेश-पादाब्ज-सेवक मैं ज्ञानानन्द गिरि कहूँगा।

जिसके परम प्रसाद से शास्त्र का अर्थ एवं तत्त्वों का निर्णय प्राप्त होता है, वाग्विभव-प्रदात्री उस महादेवी वाणी का मैं नमन करता हूँ।

तन्त्रों तथा विविध संग्रह-ग्रन्थों को भली भाँति देखकर एवं गुरुजनों के अत्यन्त सारगर्भित मत को जानकर द्वैतज्ञान-रहित जनों के मनोऽभिलाषाप्रद इस ग्रन्थ को मैं लिखता हूँ।

यदि कोई मूर्खतावश केवल पुस्तक देखकर गुरुमुख से प्राप्त किये बिना लोभ से साधना में प्रवृत्त होगा तो वह अवश्य नष्ट होगा। इसलिये उचित है कि पहिले यत्न करके सद्गुरु से उपदेश ग्रहण करे। तब साधना प्रारम्भ करे।

परब्रह्मस्वरूप देव निष्कल शिव हैं। वे सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश, निर्मलोदय, स्वयंज्योति, आदि-अन्तरहित, निर्विकार, परात्पर, निर्गुण, सच्चिदानन्द हैं। जीव उनके अंश हैं। अनादि अविद्या से आवृत एवं अनादि कर्मों द्वारा प्राप्त उपाधियों से

अग्नि की चिनगारियों की भाँति विभिन्न हैं और चार प्रकार के शरीरों को धारण कर सहस्रों में विभक्त हैं। सुकृत के फल-स्वरूप मनुष्य होकर ज्ञानी होते हैं और मोक्ष प्राप्त करते हैं।

चौरासी लाख योनियों में मानव शरीर के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता। उन योनियों में से सहस्रों जन्म के पश्चात् जीव पुण्यसञ्चय से भाग्यवश मानव जन्म एक बार पाता है। इस-लिये मोक्ष का सोपानभूत दुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर जिसने अपनी आत्मा को नहीं तारा, उसके समान पापी इस जग में और कौन है? उत्तम मानव जन्म एवं इन्द्रिय-सौष्ठव प्राप्त कर जो व्यक्ति अपने आत्मिक कल्याण को नहीं जानता, वह आत्म-घाती है।

देह के बिना कोई पुरुषार्थ नहीं कर सकता। इसलिये देह-धन की रक्षा करते हुये पवित्र कर्मों की साधना करनी चाहिये और जब तक ज्ञान प्राप्त न हो जाय तब तक कर्म करते रहना चाहिये। ज्ञानी अथवा अज्ञानी, कोई भी हो, देह की रक्षा करता हुआ ही कर्म कर सकता है और कर्मों से मुक्त होने के लिये तभी तक वर्णों का आचार भी करना चाहिये। सत्कर्मों के फलस्वरूप सद्ज्ञान के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् वह शिवत्व को प्राप्त हो जाता है।

अनित्य अथवा नित्यकर्मों को करना चाहिये क्योंकि कोई भी देहधारी सम्पूर्ण कर्मों का त्याग नहीं कर सकता। इसलिये इन्द्रियाँ अपने अपने विषय के कार्यों में प्रवृत्त होती हैं। 'मैं स्वयं निरपेक्ष हूँ'—इस प्रकार अहंभाव को दूर हटाकर जो आगत कार्यों को करता है वह कार्याकार्य गुणागुणों से सम्बन्धित नहीं होता। अथवा किये हुये कर्मों के फलों को जो त्यागता है, वह त्यागी कहलाता है और ज्ञान-प्राप्ति के अनन्तर उस तत्त्वज्ञानी तत्त्वनिष्ठ को जैसे कमल को जल स्पर्श नहीं

कर पाता, उसी प्रकार सुकर्म अथवा दुष्कर्म एवं संशय छू नहीं सकते। जिनको सहजानन्द ज्ञान प्राप्त हो जाता है और जो उसमें सतत रत रहते हैं, ऐसे तत्त्वनिष्ठ नरक में कदापि नहीं जाते। सङ्कल्पों का त्यागी ही विद्वान् है। वह कर्मों को त्याग सकता है और उन्हें त्याग भी देना चाहिये किन्तु जो अल्पज्ञ अविवेक से कर्मकाण्ड का त्याग कर अपने को पण्डित एवं ब्रह्मज्ञानी मानते हैं, वे पाखण्डी नरक में अवश्य जाते हैं।

वृक्ष जैसे फल पाकर निःस्पृह पुष्प को त्याग देता है, उसी प्रकार योगी पुरुष तत्त्व प्राप्त कर कर्म परिग्रह को त्याग दे। जिनके हृदय में ब्रह्म की स्थिति हो जाती है, उन्हें सैकड़ों अश्वमेध यज्ञों का पुण्य एवं सैकड़ों ब्रह्महत्याओं का पाप लिप्त नहीं होता। जिह्वा और उपस्थ इन्द्रिय के कारणभूत ही इस पृथ्वी के कर्म हैं। इसलिये यदि मनुष्य इन इन्द्रियों के विषयानन्द का त्यागी बन जाय तो ये इन्द्रियाँ एवं तज्जनित कर्म उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते।

ज्ञान दो प्रकार का होता है—एक आगममोत्थ और दूसरा विवेकोत्थ। शाब्दिक ब्रह्म आगममय एवं परब्रह्म विवेकज कहा जाता है। कोई विद्वान् अद्वैत की इच्छा करते हैं तो कोई द्वैत की परन्तु द्वैत एवं अद्वैत-रहित परम तत्त्व को कोई भी नहीं जानता। ममता एवं निर्ममता—ये दोनों क्रमशः बन्धन तथा मोक्ष के स्थान हैं अर्थात् 'यह मेरा है'—इस भावना से जीव बन्धन में बँध जाता है और जो निःस्पृह निर्मम भाव से जगत् के कार्यों को करता है, वह मुक्त हो जाता है।

विद्या और अविद्या दोनों के योग से दो पक्ष कहे गये हैं। जिस कर्म से बन्धन होता है, उसे अविद्या कहते हैं और जिससे बन्धन नहीं होता, उसे विद्या कहते हैं। जब तक मनुष्य के मन में अनेक सङ्कल्पित कर्म विद्यमान रहते हैं तभी

तक बन्धन भी रहता है और जब वह संकल्प-विकल्प से अपने मन को रहित कर लेता है तब मुक्त हो जाता है।

जप, होम, पूजन, तीर्थाटन, वेदशास्त्र, आगमादिकों का अध्ययन—इन इन सबकी तभी तक आवश्यकता है जब तक तत्त्वज्ञान नहीं होता। इसलिये धीर पुरुष को चाहिये कि यदि वह मुक्ति चाहता है तो सर्वदा सर्वावस्था में यत्नपूर्वक तत्त्व-निष्ठ रहे। ऐसी धारणा किस प्रकार शीघ्रातिशीघ्र हो सकती है, इसे मैं बताता हूँ—विधिवत् गुरुमुख से विद्या ग्रहणकर नित्य, नैमित्तिक, काम्य एवं सापेक्ष साधनों को क्रमपूर्वक करे। इसके विपरीत करने से आपत्तियों की सम्भावना है। इन सब बातों को जानकर बुद्धिमान् यथाक्रम साधन-सम्पन्न हो।

२—प्रातःकृत्य

साधक ब्राह्ममुहूर्त में निद्रा और आलस को त्याग कर शिर में प्रातःकाल के सूर्य के तेज और चन्द्रमण्डल संयुक्त सहस्रदल कमल में चाँदी के पर्वत सदृश श्वेतवर्ण, वीर आसन से बैठे हुये, शुक्ल आभरणों से विभूषित, शुक्लवस्त्रधारी, वर-अभय-मुद्रायुक्त-पाणि, बाईं जंघा पर रक्त आभरण भूषित और वाम कर में लाल कमल लिये हुए तथा दाहने हाथ से श्री गुरुदेव के सुन्दर शरीर को ग्रहण किये बैठी हुई शक्ति के सहित, ज्ञानानन्दयुत करुणापूर्ण दृष्टि से देखते हुए श्री गुरु-देव का नामोच्चारपूर्वक नित्य ध्यान करे। फिर भूम्यात्मक गन्ध, भावात्मक पुष्प, वाय्वात्मक धूप, तैजसरूप दीप, अमृत-रूप नैवेद्य, वरुणात्मक जल, आकाशात्मक मुकुट तथा वस्त्र, चामर, पादुका, छत्र, अलङ्कार आदि उन्हें प्रदान करे। इस प्रकार मुद्राविधि से गुरु की मानस पूजा कर योनिमुद्रा दिखा

कर गुरुपादुका मन्त्र का जप करे। अथवा वाग्भव 'ऐं' बीज का जप कर। अथवा दो अक्षरों का 'गुरु' शब्द ही मन्त्र है, जो धर्मादि का देनेवाला है, इसी का जप करे। गुरु शब्द का अर्थ यह है—गकार सिद्धिदाता, रेफ पापहारक एवं उकार विष्णु का वाचक है। इस प्रकार गुरु शब्द के अभ्यन्तर उक्त तीन आत्माओं की शक्ति निहित है। उपर्युक्त गुरु शब्दार्थ का ध्यान करते हुये गुरुमन्त्र का जप कर गुरुदेव के वाम कर में जप समर्पण कर गुरुस्तव का पाठ करे।

गुरुदेव की स्तुति कर चुकने पर उनकी आज्ञा लेकर मूलाधार चक्र में कोटि विद्युत्वत् आभावाली स्वयम्भुलिंगवेष्ठिनी सार्धत्रिवलयान्वित मृणालतन्तु की भाँति सूक्ष्म स्वेष्टदेवता-स्वरूप, सोते हुये भुजङ्ग के सदृश कुण्डलिनीशक्ति का ध्यान करे। साधक प्राण-मन्त्र से उसका उत्थान कर षट्चक्रों को भेदते हुये सहस्रारस्थित सदाशिव में उसे स्थापित कर सहस्रार के ऊपर परामृत रस के पान से उल्लसित हृदय-घूर्णित नेत्र और पराशक्ति के आलिंगन से तामसरहित, कुल शिष्यों से युक्त, सुखी अन्तःकरणवाले, वर और अभय हस्त तथा समस्त कुलतत्त्वार्थज्ञाता कुलगुरुओं का क्रम से ध्यान एवं मानसोपचारों से पूजन करे। फिर उन्हें नमस्कार कर सहस्रार से अमृत-वृष्टि कर कुण्डलिनी देवी को उससे तृप्त कर पुनः उसे मूलाधार में लाकर स्थापित करे और उसके तेज से अपना समस्त शरीर व्याप्त है, ऐसी भावना कर 'मैं देवी हूँ; मैं सच्चिदानंदस्वरूप हूँ'—ऐसी भावना करे।

साधक जब कभी कहीं बाहर जाय और कुलवृक्षों एवं कुल को तथा कुलपति को देखे तो यत्नपूर्वक नमस्कार करे। अशोक, केशर, कनेर, आम, तिल, नमेरु, चिरौंजी, निर्गुण्डी, कदम्ब, मरवा, चम्पा, शाखी—ये बारह वृक्ष कुलवृक्ष कहे जाते

हैं। अथवा सुसिद्धि के लिये पुनः कुलवृक्षों को कहता हूँ। बहेरा, करञ्ज, नीम, पीपल, कदम्ब, बेल, बरगद, गूलर, इमली —ये दस वृक्ष कुलवृक्ष हैं। कुलवृक्षों में सदैव कुल-योगिनियाँ रहती हैं। इसलिये इन वृक्षों के नीचे सोना अथवा कोई उपद्रव नहीं करना चाहिये। वरन इन्हें देखकर भक्तिपूर्वक नमन करना चाहिये।

'क्लीं कामदेव सर्वजनप्रियाय हृदयाय' इस मन्त्र से दन्तधावन करना चाहिये। दन्तादि शुद्धि करने के पश्चात् ही अपने कल्पोक्त विधि को करे क्योंकि जो व्यक्ति प्रातःकृत्य न कर भक्तिपूर्वक भी देवी की अर्चा करता है, उसकी समस्त पूजा शौचहीन की क्रिया-सदृश निष्फल होती है।

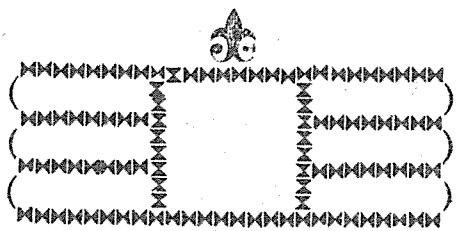

दूसरा उल्लास

१—स्नान

अब मैं शाक्तों की सिद्धि के निमित्त स्नानविधि कहता हूँ। यथाविधि जलाशय में जाकर अपने को देवता का वासस्थान भावित कर धीर साधक प्रथम वरुणदेव को नमस्कार करे। फिर डुबकी लगा खड़े होकर कुलदर्भ धारण करे। 'कुलदर्भ' शब्द से यहाँ सुवर्ण अथवा रजत से तात्पर्य है न कि वन्य कुशों से। दोनों हाथों की अनामाओं में स्वर्ण की अँगूठी और तर्जनियों में चाँदी की पहननी चाहिये। दूर्वा के विना मा की पूजा कभी न करनी चाहिये; चाहे अन्य पुष्पों की भले कमी हो क्योंकि दूब से सर्व पुष्पों की पूर्ति हो जाती है। इसलिये यदि कुछ भी न हो तो हाथों में दूब लेकर सब कार्यों का आरम्भ करे।

साधक पूर्व अथवा उत्तराभिमुख होकर पहिले मूल-मन्त्रोच्चारपूर्वक 'आत्मतत्त्वाय, विद्यातत्त्वाय, शिवतत्त्वाय' और सबके अन्त में स्वाहा कहकर तीन बार आचमन करे। फिर कुलपात्र, दूर्वा, तिल और जल लेकर स्नान का सङ्कल्प करे। पुनः अंकुशमुद्रा के द्वारा सूर्यमण्डल से तीर्थों का आवाहन जल में करे और मूलमन्त्र से जल को दश बार अभिमन्त्रित कर कुम्भमुद्रा से उस जल को लेकर अपने शिर का दश बार अभिसिंचन करे। फिर अँगुलियों से मुख, कान, नाक और नेत्रों को बन्द कर मूलमन्त्र का स्मरण करता हुआ तीन डुबकियाँ लगाकर वस्त्र से शरीर का मार्जन कर सन्ध्यो-पासन करे।

२—सन्ध्यावन्दन

साधक मूलमन्त्र से तिलक और शिखाबन्धन कर तीन बार आचमन कर षडङ्गन्यास करे। दाहिने हाथ से वाम कर में जल लेकर फिर दक्ष कर से उसे ढँककर व्योम (हं), वायु (यं), वह्नि (रं), पृथ्वी (लं) और वरुण (वं) बीजों से क्रमशः तीन-तीन बार उसे अभिमन्त्रित कर पुनः मूलमन्त्र से भी और मूलमन्त्र के द्वारा तत्त्वमुद्रा से उस जल को सात बार अपने शिर पर छिड़क कर शेष जल को दक्ष कर में लेकर दक्ष नासापुट में लगाकर उस जल को तेजोमय ध्यान कर ऐसी भावना करे कि यह जल दक्ष नासापुट से प्रविष्ट होकर समस्त शरीर में भ्रमण कर वाम नासापुट से आया है और इससे शरीरगत सम्पूर्ण पाप धुल गया है और उसे बाईं ओर कल्पित वज्रशिला पर पटक दे। इसके पश्चात् दोनों हाथ धोकर फिर जल लेकर 'ह्रां ह्रीं सः मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तियुक्ताय अर्घ्यं स्वाहा' इस मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे।

इसके पश्चात् साधक शक्ति-सन्ध्या करे—अपने सम्मुख इष्टदेवता के यन्त्र की कल्पना कर उसमें गणों से युक्त देवी की भावना करे। पुनः गन्ध, जल और कुलपात्र लेकर मूल-मन्त्रोच्चारपूर्वक 'अमुकीं देवीं तर्पयामि नमः' कहकर इष्टदेवता के मुँह में तीन बार तर्पण करे। इसी प्रकार 'सपरिवारं सायुधं सवाहनं सशक्तिकं अमुकानन्दनाथगुरुं तर्पयामि नमः' से गुरुदेव का तर्पण कर यथाशक्ति इष्टदेवता की गायत्री का जप कर सावरणा सूर्यमण्डलवासिनी देवी का ध्यान कर मूलमन्त्रोच्चार-पूर्वक—'उद्यदादित्यवर्तिन्यै शिवचैतन्यमय्यै स्वाहा' इस मन्त्र से अर्घ्य प्रदान कर अंकुश मुद्रा से देवी को हृदय में स्थापित करे। फिर साधक जल से बाहर निकल कर मूलमन्त्र से कुल -

वस्त्र धारण करे। मोक्षार्थी साधक रक्तवस्त्र, भोगार्थी श्वेत, मारणार्थी कृष्ण, वश्यार्थी रक्त, उच्चाटनार्थी व्याघ्रचर्म एवं शुभकर्मार्थी वल्कल वस्त्र धारण कर मौन हो हृदय में इष्टमन्त्र का स्मरण करता हुआ हाथ-पैर धोकर पूजा-स्थान में प्रवेश करे। इस प्रकार मैंने पूजनाधिकार-प्रदायक स्नानकर्म का कथन किया क्योंकि स्नान-तर्पण-रहित साधक पूजन का अधिकारी नहीं है।

३—पूजा-स्थान-निर्णय

अब पूजा-स्थानों का निर्देश करते हैं। एकलिंग स्थान में, श्मशान में, शून्यागार में, चतुष्पथ में, बिल्वमूल पर, नदी किनारे, पर्वत के शिखर भाग में, ऊजड़, निर्जन, भू-गर्भ में, देवालय में, पीपल के नीचे, वट के नीचे, त्रिशूलक में, हट्टागार में, अपने गृह में, जहाँ पशुओं की दृष्टि न पड़ सके ऐसे स्थान में, राजगृह में, ढकी हुई गुफा में एवं निश्छिद्र मण्डप में सदैव पूजन करना चाहिये। उपर्युक्त स्थानों में पूजन करने से पीठस्थल का फल प्राप्त होता है और सिद्धि प्राप्त होती है। पाँच कोस के बीच में, जहाँ दूसरा शिवलिंग न हो, उसे एकलिंग स्थान कहते हैं। जहाँ देवी की मूर्ति स्थापित हो, उसे चतुष्पथ कहते हैं। यहाँ यत्नपूर्वक जाकर सिद्धि की इच्छावाला साधक जप करे।

४—यागस्थान में प्रवेश

पूजन-स्थल के द्वारदेश में जाकर द्वारदेवताओं की पूजा करे और वहाँ पर सुस्वर बाजे बजवावे एवं नृत्यगायनादि करावे। सरसों, अक्षत, दूर्वा और तिल लेकर—

> अपसर्पन्तु ते भूता, ये भूता भुवि संस्थिताः।
> ये भूता विघ्नकर्तारस्ते, नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

यह पढ़कर वाग्भव बीज 'ऐं' का उच्चारण कर साधक नाराच मुद्रा से कुलभूतों को हटाकर यागभूमि में प्रवेश करे।

५—भूमिशुद्धि

वहाँ वह कूर्मचक्र की रचना करे। प्रोक्षण करने के लिये सामान्यार्घ्य की स्थापना करे। इसके लिये वह अपनी बाईं ओर त्रिकोणवृत्त-चतुरस्र का मण्डल बनावे। उस पर वह्निमण्डल का पूजन कर आधार की स्थापना करे। आधार पर अस्त्रमन्त्र (फट्) से प्रोक्षित पात्र रखकर उसकी पूजा करे। उसमें 'सूर्यमण्डल' का पूजन कर हृन्मन्त्र से जल भरे। जल में इन्दुमण्डल का पूजन करे। फिर उसमें गन्ध-पुष्प छोड़े। फिर अंकुश मुद्रा से उसमें तीर्थों का आवाहन कर षडङ्गों का आयोजन करे। आग्नेय, ईशान आदि कोणों में दिक्ष्वङ्गपूजन करे। तब आठ बार मूलमन्त्र का जपकर मूलमन्त्र के बाद अस्त्रमन्त्र की योजना कर उस जल से अपना तथा यागभूमि का सिंचन करे। इसके बाद साधक नैर्ऋत्यकोण में 'ॐ भगवति धरणीविधसे स्वाहा' मन्त्र से पृथ्वी को अर्घ्य प्रदान करे। फिर पूजास्थान को मण्डप, धूप-दीप, पुष्पमाला आदि से सजावे। यह भूमिशुद्धि हुई।

६—आसनादि स्थापन

तदनन्तर साधक पूर्ववत् ही भूमि पर मण्डल बनाकर उस पर विधिपूर्वक आसन की स्थापना करे। यहाँ विविध आसनों का उल्लेख करता हूँ। कौशेय आसन भोगदायक, रक्तकम्बल का आसन सिद्धिदायक, सूत वस्त्रासन रोगहारक, व्याघ्रचर्मासन मोक्ष तथा श्रीदायक, ऊन दुःखहारक और मृगचर्मासन ज्ञानसिद्धिद है। संन्यासी तथा ब्रह्मचारी को विशेषतः कृष्ण-

मृगचर्म ही योग्य है। काष्ठासन किसी भी साधक को न ग्रहण करना चाहिये क्योंकि वह दौर्भाग्यप्रद है। अत्यन्त ऊँचा, अति नीचा, फटा हुआ एवं टूटा हुआ आसन भी नहीं रखना चाहिये वरन कोमल, चिकना, मनोहर आसन ही साधना के लिये उपयुक्त है।

उपर्युक्त आसनों में से कोई भी लेकर सामान्यार्घ्य जल को अञ्जलि-पुट में लेकर उस पर छिड़क दे और फिर निम्न विनियोग-मन्त्र पढ़कर पृथ्वी पर जल गिरा दे—

ॐ पृथिवीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनस्थापने विनियोगः। ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥ तब पृथ्वी पर तीन कुश बिछा दे। उनके ऊपर आसन बिछा कर बैठे। आसन के नीचे पूर्वोक्त मण्डल का 'ह्रीं आधारशक्ति-कमलासनाय नमः' इस मन्त्र से पूजन करे। तब उस पर साधक वीरासन से बैठे। यथा—दक्षपाद के गुल्फ को वाम जङ्घा पर रखे और वामपाद के गुल्फ को वाम जङ्घा के नीचे रखे। ग्रीवा और शरीर को सीधा रखे। इसे वीरासन कहते हैं। कामाख्या पीठ जिस दिशा में हो, उस ओर अथवा पूर्व की ओर मुख कर स्वस्थ चित्त से साधक साधना में प्रवृत्त हो। सामान्यार्घ्य के जल से यागभूमि का प्रोक्षण कर तब आगे की विधि पूर्ण करे।

दीक्षित, कुलीन, कुलात्मा, देवता एवं गुरुभक्त युवतिजन संयुक्त यागभूमि में अनेक विध के पुष्प तथा अनेक प्रकार के गन्ध तथा कर्पूर, अगर, धूपादि से सुवासित वस्त्रों के वितान, लगे हुये ताम्बूल, पेय द्रव्य, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से युक्त सर्वालङ्कारादि भूषित श्रेष्ठ साधक मूल विद्याभिमन्त्रित जल से याग वस्तुओं को प्रोक्षित कर सबको अपने दक्ष भाग में

स्थापित करे और कुम्भ को वाम में। देवता के पश्चिम में कुलद्रव्यों को रखे। अथवा नैवेद्य को दक्षिण या वाम भाग में रखे किन्तु पीठ की ओर नहीं। अथवा नैवेद्य वाम भाग में रखे। परन्तु पीठ की ओर कदापि न रखे। दीप सदा दक्षिण भाग में ही रखे, सामने अथवा वाम में कभी नहीं। धूप को सदैव वाम भाग में ही स्थापित करे किन्तु सम्मुख या दक्षिण कभी न रखे।

७—पुष्पादि-निर्णय

गन्ध, पुष्पादि, भूषणादि सम्मुख ही निवेदन करे। भूमि में गिरा हुआ, कृमि-केशयुक्त, किसी के अङ्ग से स्पर्श किया हुआ, सूँघा हुआ एवं मलिन पुष्प देवता को न अर्पित करे।

अपना कल्याणेच्छु साधक कालिका देवता को कभी दो टुकड़े कर पुष्प न अर्पित करे। इसी तरह रक्त अर्घ्य, श्वेतदूर्वा, नीलकण्ठ, कुरण्टक महादेवी को कदापि न अर्पित करे। सुगन्धयुक्त श्वेत, रक्त एवं लोहित वर्ण के पुष्पों से सदा पूजा करनी चाहिये। कुश, मरुवा और बिल्वपत्र के अतिरिक्त देवी की अन्य किसी पत्र से पूजा न करे। तुलसी-पत्र भूलकर भी न अर्पित करे। देवी की पूजा सुगन्धहीन पुष्पों से न करे वरन सम्पूर्ण वस्तुयें सुगन्धित ही होनी चाहिये परन्तु जवा, बन्धूक, मन्दार, सिंदूर, महोत्पल एवं रक्तचन्दन—इन गन्धहीन पुष्पादियों से भी पूजन करे।

नन्द्यावर्त, तिलपत्र और केशरपत्र, मदन, मरुवा, दाड़िम, कुन्द पुष्प एवं नानोपहार-बलियों से तथा अनेक प्रकार के मनोहर पुष्पों से, अपामार्ग के पत्रों से, भृङ्गराज पत्रों से और कुलपुष्प से, धूप-दीप से, श्रेष्ठ साधक जिस प्रकार सिद्धि में विघ्न न आवे, प्रयत्नपूर्वक चण्डिका का पूजन करे। तारा

और काली का उपासक मालती के पुष्प इन देवताओं को कभी भी न अर्पित करे। धतूरे के फूल या फल देवी को न दे। कमल, चम्पा, मौलशिरी के पुष्पों में तथा बिल्व में और गङ्गाजल में बासी होने का दोष नहीं लगता। अपने देवता के पुष्पों को साधक अलग-अलग ही रखे। एक में कदापि न मिलावे क्योंकि अनिष्ट होने की सम्भावना है। इसी प्रकार नैवेद्य की वस्तुयें भी पृथक्-पृथक् रखनी चाहिये।

पूजाकाल में वासुदेव का नाम स्मरण करने से साधक को नरक की प्राप्ति होती है और वैष्णव पुष्प का स्पर्श हो जाने पर शाक्त को चाहिये कि वह हाथ धोकर आचमन करे। तब पूजन की अन्य वस्तुओं का स्पर्श करे।

८—शक्तिपूजा

भक्ति-श्रद्धायुक्त सावधान एवं पवित्र होकर साधक अपने वाम भाग में पति-परायण वस्त्र एवं अलङ्कार-शृङ्गार विभूषित दीक्षित चारुहासिनी सुन्दरी शक्ति को बिठाकर तब पूजन प्रारम्भ करे क्योंकि शक्ति के बिना पूजा निष्फल होती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अपनी शक्ति ही महादेवी है और साधक ही स्वयं शिवरूप है। इसलिये परस्पर इस भाव से तन्मय होकर साधना करने से देवत्व की प्राप्ति होती है। जैसे प्राण के बिना शरीरधारी तनिक भी हिल नहीं सकता, उसी प्रकार शक्ति के बिना साधक देवी-पूजा का कदापि अधिकारी नहीं हो सकता।

९—सम्विदा-ग्रहण

जप प्रारम्भ करने के पूर्व ही द्रव्य का अधिवास शरीर में साधक कर ले। फिर जप एवं देवस्मरण करे क्योंकि द्रव्यपान किये बिना यदि साधक साधना करता है तो वह कुभित होता

है। आनन्द के बिना जो व्यक्ति चण्डिका का अर्चन करता है; वह रोगी और दुःखी होता है तथा मृत्यु होने पर नरकगामी। इसलिये पूजन के आदि में सम्वित् एवं आसव की योजना करनी चाहिये। सम्वित् तथा आसव इन दोनों में सम्वित् ही श्रेष्ठ है। विजया ग्रहण करके जो पुरुष मां का ध्यान करता है, उसको ध्यानमयी मूर्ति तुरन्त प्रत्यक्ष हो जाती है। इसलिये उत्तम साधक पूजा के आदि में सम्वित् का प्रयोग अवश्य करे। अब हम उसके भेदों का वर्णन तन्त्रशास्त्रानुसार करते हैं—श्वेत पुष्प की ब्रह्माणी, रक्तपुष्पा क्षत्रिया, पीत-प्रसूना वैश्या एवं कृष्णपुष्पा शूद्रा होती है। इनके शोधन मन्त्र पृथक्-पृथक् कहता हूँ—

सम्विदे, ब्रह्म-सम्भूते ! ब्रह्म-पुत्रि, सदाऽनघे!
भैरवाणां च तृप्त्यर्थं, प्रसन्ना भव सर्वदा।।
ॐ ब्रह्माण्यै नमः स्वाहा, ब्रह्माणीं शोधयामि ।
सिद्धि-मूल-क्रिये, देवि ! हीन-बोध-प्रबोधिनि!।।
राज-प्रजा-वशङ्करि ! शत्रु-कण्ठ-त्रिशूलिनि!
ॐ ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा, क्षत्रियां बोधयामि ।।
अज्ञानेन्धन-दीप्ताग्ने ! ज्ञानाग्ने, ज्ञान-रूपिणि!
आनन्दस्याहुतिं प्रीतिं, सम्यग्-ज्ञानं प्रयच्छ मे ।।
ह्रां वैश्यायै नमः स्वाहा, वैश्यां शोधयामि ।
ॐ नमस्यामि नमस्यामि, योग-मार्ग -प्रदर्शिनि!।।
त्रैलोक्य-विजये, मातः! समाधि-फलदा भव ।
क्लीं (श्रीं) शूद्रायै नमः स्वाहा, शूद्रां शोधयामि।।

अनन्तर सम्वित् पात्र के ऊपर दक्ष हाथ रखकर इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करे—'ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृत-माकर्षय अमृतं कुरु कुरु सिद्धिं देहि त्रैलोक्यं मे वशमानय फट-फट्

स्वाहा।' अथवा 'हसक्षमलवरयूँ हसौं आनन्दभैरवाय वषट्।' इन दोनों मन्त्रों में से किसी से अभिमन्त्रित करने के पश्चात् सात बार मूलमन्त्र का जपकर आवाहनादि मुद्रायें तथा धेनुमुद्रा दिखाकर तीन बार छोटिका मुद्रा से दिग्बन्धन कर दिव्य दृष्टि से पदाघात करके विघ्नोत्सारण करके साधक सात बार शिर में गुरुवर्गों का तर्पण कर तत्त्वमुद्रा से परिवार-सहित देवी का हृदय में तर्पण कर शक्ति को पात्र देकर और स्वयं भी वाम हाथ में पात्र लेकर—ऐं वद वद वाग्वादिनि जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्व-सत्ववशङ्करि स्वाहा—यह मन्त्र पढ़कर विजया के वर्ण के अनुसार क्रम से गोदुग्ध, घृत, मधु और सुरा के अनुपान से मार्गशीर्ष मास से प्रारम्भ कर तीन मास तक एक समय, दो बार, तीन समय अथवा पाँचों काल जिसकी जैसी इच्छा हो यथाशक्ति सेवन करे तो अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी। परन्तु सम्वित् एवं आसव का सेवन इतना ही हो कि पशुजनों के बीच प्रगट न हो। इसलिये श्रेष्ठ साधक निर्जन स्थान में अथवा गुरु के पास इनका सेवन करे, पिता और माता के सामने न सेवन करे। इन्हें प्रगट करने से सिद्धि की हानि होती है।

१०—पूजा-प्रारम्भ

श्रेष्ठ साधक रक्ताम्बर धारण कर शक्तिसंयुक्त हो ताम्बूल खाकर धूपादि से सुवासित शरीर को कर देवता बनकर देवता की पूजा करे। अस्त्र मन्त्र से फट्कार करता हुआ गन्ध और पुष्पों से हाथों को सुगन्धित कर मूलमन्त्र का स्मरण करके दोनों हाथों को परस्पर रगड़ ले और उस पुष्प को सूँघकर नाराच मुद्रा से ईशान कोण की ओर फेंक दे। दक्ष हाथ की तर्जनी को अँगूठे के आगे लाकर ऊर्ध्व रेखा से मिलावे और शेष अंगुलियों को ऊपर उठावे, इसे नाराच मुद्रा कहते हैं।

इसके पश्चात् गुरुदेव का ध्यान कर वाम में गुरु को तथ दाहिनी ओर गणपति को एव मध्य भाग में इष्टदेवता को स्थापित करे।

अनन्तर वाम पद की एड़ी से तीन बार भूमि का ताड़न और तीन बार करास्फोट तथा ऊपर मुँह उठाकर तीन बार ताली बजावे। ये क्रियायें स्व-सम्प्रदायानुसार करे।

११—प्राणायाम

अब प्राणायाम करे क्योंकि प्राणायाम क्रिया के बिना किये गये जप होमादि सब विफल हो जाते हैं। इसलिये जप के पूर्व प्राणायाम सावधानी से करना चाहिये।

१६, ६४ और ३२ मात्राओं से यथा क्रम प्रणव का जपकर वाम, मध्य तथा दक्षिण नाड़ियों से पूरक, कुम्भक एवं रेचक करे। इस क्रिया में कनिष्ठा, अनामिका और अंगुष्ठ से नासिका ग्रहण की जाती है। इसे प्राणायाम जानना चाहिये। इसमें तर्जनी और मध्यमा का उपयोग नहीं होता। अथवा मन्त्रवेत्ता साधक मूल या प्रणव से प्राणायाम करे। प्रणव का उच्चारण करता हुआ वाम नासिका से वायु को खींचकर उदर पूर्ण करे। यह देहपूरक पूरक प्राणायाम होता है। समस्त शरीर को ढँककर श्वासोच्छ्वास-रहित हो पूर्णकुम्भ की भाँति स्थित हो जाय, यह कुम्भक प्राणायाम है। मन्त्रज्ञानी एक श्वास से वायु को बाहर निकाले, यह रेचक प्राणायाम है। जानु की प्रदक्षिणा करके न शीघ्र न विलम्ब से चुटकी बजाने को मात्रा कहते हैं। बारह मात्राओं से बुधजन पूरक और उसकी द्विगुण मात्राओं से रेचक तथा रेचक की द्विगुण मात्राओं से कुम्भक करते हैं। इस प्रकार तीनों प्राणायामों के करने से त्रितयात्मक एक प्राणायाम होता है।

१२—भूतशुद्धि

अब हृदय में स्थित सर्वसाक्षी चैतन्य को साकार भावित कर प्रणव के जप से ब्रह्मरन्ध्र से बाहर निकाल कर और प्रणव से ही सम्पुटित कर मस्तक के ऊपर स्थित करे और अपने शरीर को भीतर तथा बाहर चैतन्य-रहित समझे। फिर नाभिमण्डल के मध्य में स्थित वायुमण्डल के बीच में धूसरवर्ण तथा तप्त 'यं' बीज का ध्यान करे और उससे उसका शोधन करे। फिर अग्निमण्डल में स्थित अग्निरूप 'रं' बीज से उसे जलावे और उसकी भस्म-राशि से देह की आकृति बनावे। फिर भ्रू के मध्य में अथवा हृदय में स्थित अर्धचन्द्राकार श्वेत वर्ण दो कमलों के दक्षिण में वरुणमण्डल का ध्यान करे। फिर वहीं पर स्थित मधुरूप 'वं' बीज से उसका प्लावन करे और उसमें पार्थिव जीव को स्थापित कर हेममण्डल का चिंतन करे। फिर उसे चैतन्य रूपी प्रणव से दो हिस्सों में करके मस्तक के ऊपर ले जाकर चैतन्य से मिला दे। अब वह अमृत-प्लावित मर्त्य पिंड धौत-कल्मष हो गया। इसके पश्चात् साधक अपने को देवतारूप समझे।

अब अन्य प्रकार से भूतशुद्धि कहते हैं। मूलाधार चक्र से प्राणशक्ति कुण्डलिनी को उठाकर ब्रह्ममार्ग से उसे ले जाकर हंस मन्त्र के द्वारा पुष्कर-स्थान में परमात्मा से संयुक्त करे। पुनः संहारक्रम योग से पञ्चतत्वों का उद्धार करे। वायु, अग्नि और जल के बीजों से क्रमशः शोषण, दाहन एवं प्लावन करके इस विधि से भूतशुद्धि करके अपने को देवता स्वरूप समझे।

१३—जीवन्यास

अब साधक देवता के जीव को निम्न मन्त्र से अपनी देह में

स्थापित करे। इस क्रिया को पुष्प से अथवा अनामा अंगुली से या मन से करे। यथा—

'आं सोऽहं अमुष्याः प्राणाः इह, अमुष्याः जीव इह स्थितः, अमुष्याः सर्वेन्द्रियाणि, अमुष्याः वाङ्-मनश्चक्षु-श्रोत्र-घ्राण-प्राण-पदानि इहागत्य, सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' अथवा 'आं ह्रीं क्रों यं-रं-लं-वं-शं-षं-सं-हं हंसः सोऽहं अमुक-देवतायाः प्राणाः इह प्राणाः, अमुक-देवतायाः वाङ्-मनो-चक्षु-श्रोत्र-घ्राण-पदानि इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।'

१४—न्यास-विवरण

अब स्वकल्पोक्त न्यास आदि करे। यहाँ हम षडङ्गों का, मुद्रा का, स्नान का एवं मन्त्र का कथन करते हैं। तीन, दो, एक, दश, तीन, दो अंगुली क्रम से हृदय, मस्तक, शिखा, कवच, लोचन-त्रितय और करतल में नमः—स्वाहा—वषट्—हुम्—वौषट् और फट् की योजना यथास्थान साधक करे। इसी प्रकार ऋषि, छन्द, बीज एवं शक्ति-संयुक्त देवता का न्यास, तथा कील आदिकों का शिर, मुँह, गुह्य, पाद तथा सर्वाङ्ग में गुरूपदिष्ट मार्ग से साधक न्यास सम्पन्न करे। इसके पश्चात् षडङ्गन्यास करे। मातृका न्यास के विषय में जो विशेषता है, उसे कहते हैं—

ललाट में अनामिका और मध्यमा से, मुख में भी इन्हीं से। तर्जनी, मध्यमा, अनामा तथा वृद्धा और अनामा से नेत्रों में। अंगुष्ठ से कानों में तथा कनिष्ठा और अंगुष्ठ से दोनों नासिकाओं में। मध्यमा, अनामा, तर्जनी से गण्डस्थलों में और केवल मध्यमा से दोनों ओष्ठों में, अनामा से दाँतों में, मध्यमा से शिर में, मुख में अनामा से। पादों में, हाथों में,

पार्श्वों में और पीठ में कनिष्ठा, अनामा, मध्यमा से। अंगुष्ठ मिलाकर उन्हीं से नाभि देश में और कुक्षि में। हृदय में, कन्धों में, ककुत् में (गर्दन के ऊपर) पाणितल से। हृदय से पूर्व तथा कुक्षि एवं मुख में पाणितल से न्यास करना चाहिये।

ये मातृका मुद्रायें क्रमशः कही गईं। इन्हें न जानकर जो न्यास करता है, उसका किया हुआ न्यास विफल होता है। पचास अक्षरों का न्यास क्रम से प्रकाशित किया गया। इनके आदि अन्त में 'ॐ' या 'नमः' लगता है और ये बिंदुसहित और बिंदुरहित होती हैं। पण्डितों का कथन है कि माया 'ह्रीं' लक्ष्मी 'श्र' के बीज पूर्व में जोड़कर न्यास करना चाहिये। अथवा केवल सर्ग (विसर्ग) बिंदुसहित कला 'ई' से युक्त तार्तीय 'ह्सौः' रुद्र 'ह' अन्त में शक्ति 'सौः' फिर कामबीज 'क्लीं' और 'ट' ऐसा अथवा पहले शक्तिबीज फिर 'श्रां' से युक्त सुधाबीज 'वं' का शरीर में न्यास करे। अथवा शक्तिबीज 'सौः' श्रीबीज, कालबीज 'क्लीं' पूर्व में जोड़कर न्यास करे। अथवा शक्ति 'श्री' कामबीज 'क्लीं' है अन्त में जिसके और 'आँ' है आदि में जिसके, ऐसी शक्ति मातृका का तथा अजपा 'हंस' परमात्मा 'क्षं' बीज, प्रपञ्च 'अ' बीज, यज्ञ 'ज-य' बीज--इस प्रकार बारह प्रकार की मातृकाओं का स्वरूप शास्त्रों में कहा गया है। जिसकी जैसी रुचि हो, उस रूप से वह उसे अपने शरीर में स्थापित करे। इन मातृकाओं का न्यास करके तन्मय हो साधक वागीश्वरीमय हो जाता है। इन न्यासों को अनामा अंगुली से अथवा मन से विद्वान् करे। ऋष्यादि तथा व्यापकान्त स्वकल्पोक्त न्यास साधक करे। प्राणायाम आदि न्यासों से आत्मा की शुद्धि होती है।

—: ❀ :—

तीसरा उल्लास

१—अन्तर्यजन

अन्तर्याग करके तब बहिर्यजन करना चाहिये क्योंकि अन्तर्याग किये बिना साधक बहिर्याग का अधिकारी नहीं होता। अन्तर्याग इस प्रकार करे—साधक अपने हृदय में सुधासागर का ध्यान करे। पुनः उसके मध्य में सुवर्ण बालुकामय रत्नद्वीप का और उसके चारों ओर मनोहर पारिजात वृक्षों की भावना करे। फिर उनके बीच में पञ्चाशद-क्षरमय कल्पवृक्ष की और उसके मूल पर शत योजन-विस्तीर्ण ब्रह्माण्ड-मण्डल-व्याप्त सुवर्णमयी चहारदारी-संयुक्त चार द्वारवाला भाँति-भाँति के रत्नों से जटित मनोरम उदय होते हुये सूर्य की भाँति देदीप्यमान तेजोमय मन्दिर की भावना करे। फिर ऐसी कल्पना करे कि उसमें बहुत से चामर, घण्टा आदि वितान आदि शोभायमान हो रहे हैं तथा शीतल मन्द सुगन्धित वायु बह रहा है और सुगन्धित धूप की गन्ध भर रही है। उसके मध्य में रत्नमयी सुरम्य वेदी बनी हुई है, जिसके ऊपर सोने के तारों का बना हुआ अति मनोहर छत्र तना हुआ है। उस वेदिका पर पीयूष-पूरित महायन्त्र स्थापित है।

इसके अनन्तर साधक मनोभावना से ही षोडशदल कमल के एक-एक दल में दक्षिणावर्त्त क्रम से पाद्य के तीन पात्र, अर्घ्य के तीन पात्र, छः पात्र आचमन के, तीन मधुपर्क के एवं एक पात्र भोग का स्थापित करे। सहस्रार के अमृत

से पात्रों को पूर्ण करे। स्वकल्पोक्त विधि से पीठपूजा करे। फिर सबके ऊपर पश्चिमाभिमुख कमल का ध्यान करे।

इस दिव्यांगवाले कमल के भीतर (यन्त्रराज के बिंदु में) शिव-शक्ति संयोग से स्रवित अमृतानन्द से आनन्दित परिवार-सहित स्वेष्टदेवता का आवाहन कर मानसोपचारों से उसे उत्तम द्रव्य अर्पित करे। पहले आसन देकर फिर स्वागत एवं कुशल पूछकर चरणों में पाद्य, शिर में अर्घ्य एवं सहस्र-दल भृङ्गार से आलम्बित नाल-नलिका से च्युत परम अमृत-रूप जल को स्वर्णपात्र में लेकर भाव पुष्पों से संयुक्त कर मुख में आचमन दे। फिर मुख में मधुपर्क देकर पुनः आचमन दे। चौबीस तत्त्वमय गन्ध अर्पित करे और विचक्षण साधक स्वयम्भू कुसुम तथा कुंकुम और रक्तचन्दन निवेदित करे। फिर धूप और दीप को सात तथा आठ भाववाले पुष्पों से पूजित कर समर्पित करे। फिर महादेवी को मनःकल्पित अनेक प्रकार का नैवेद्य निवेदित कर यथोक्त विधि से तीन बार तर्पण करावे। इसके पश्चात् षडङ्ग देवताओं, गुरु-पंक्तियों एवं अङ्ग देवताओं का प्रयत्नपूर्वक पूजन करके स्वेष्ट देवता को निम्नोक्त प्रकार से स्नान करावे—

साधक अपने वामभाग में रत्नसिंहासन-संयुक्त मण्डल कल्पित कर उसमें देवी को लाकर नाना गन्ध-समन्वित उद्वर्तन करके नारायणादि सुगन्धित तैल देकर गन्धतोय-समन्वित सुवर्णकलशगत नाना तीर्थजल से पर देवता को स्नान कराकर सुकोमल रेशमी वस्त्रों से अङ्गों को मार्जित कर उसे रक्तवर्ण के रेशमी वस्त्र पहनाये। आँखों के तेजतत्त्व से शरीर को पोंछे, कान के आकाशतत्त्व से वस्त्र की कल्पन करे। विधिवत् वन्दना करके उत्तम साधक नाना प्रकार के रत्नों से जटित कंघी से केशों का संस्कार करे। फिर नाना

प्रकार के रत्नों से जटित रेशम के गुच्छे से चोटी गूँथे। ललाट में तिलक लगावे तथा केशों के मध्य में अर्थात् माँग में सिंदूर लगावे। हाथों में नागेन्द्र दन्त-निर्मित मनोहर शङ्ख तथा केयूर, कङ्कण और कटक पहनावे। चरणाब्जों की अंगुलियों में नाना रत्न-निर्मित अंगुलीयक आदि तथा नूपुर एवं कट में करधन पहनावे। शिर में चूड़ामणि तथा रत्न-निर्मित मुकुट और कानों में सुपरिष्कृत ताटङ्क, कुण्डल, नेत्रों में कज्जल, नासाग्र में गजमौक्तिक, गले में मणिकुक्का-जटित ग्रीवापत्र एवं तीन लड़ियों का आनन्दहार, करकी, अंगुलियों में अंगुलीयक रत्न प्रदान करे।

फिर सब अङ्गों में गन्धचन्दन और सिद्धक का लेप करे। ओष्ठों में काञ्चनाञ्चित कंचुली और अलक्त प्रदान करे। प्रवाल-जटित सुवर्ण-पादुका देकर रत्न-निर्मित पालने पर बिठाकर मंडप में लाकर पुनः पाद्यादिक देकर सनातनी मां को गन्धादिक लगाकर भाव पुष्पों से पूजा करे। फिर अमाय, अनहङ्कार, अराग, अमद, अमोह, अदम्भ, अद्वेष, अक्षोभ, अमात्सर्य, अलोभ रूप दश पुष्प तथा अहिंसा, इन्द्रिय-निग्रह, दया, क्षमा, ज्ञानरूप पाँच—इन पन्द्रह भाव-पुष्पों से शिवा की पूजा करे। कनेर, जवा, द्रोण, चम्पा, नागकेशर, अपरा, कदम्ब, पारिजात पुष्पों की गन्ध-समन्वितमाला, सप्तद्वीप-समुत्पन्न अनेक प्रकार के पुष्पों की तथा अनेकजातीय पक्षों की बनी हुई सुमेखला माला यत्नपूर्वक देवी को साधक प्रदान करे। कुण्डगोलोद्भव तथा वायुरूप धूप, सहस्रार की कर्णिका के पात्र में परम अमृतरूप तेल, मूलाधार में वह्निरूप चिदग्नि-मय दीप, मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यंत सुषुम्नाहत वायु से उत्पन्न अनाहत ध्वनिमय घण्टा, षड्रसमय नैवेद्य, अम्बररूप चामर, सूर्यरूप दर्पण, चन्द्रमण्डलरूप उत्तम छत्र, सुधा समुद्र,

मांसशैल, मत्स्यराशि, अनेकविधफल, सुपक्व चरु, घृताक्त परमान्न, भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेय, चर्वण प्रदान कर अर्घ्यजल से पुनः आचमन देकर मूलाधारोत्थ वायु से बाह्य चक्र प्रदान करे। रज-सत्वगुणों से युक्त कर्पूर-चूर्ण मिश्रित ताम्बूल रत्नपात्र में रखकर अर्पित करे। पूर्ववत् पुनः देवी को तर्पण कराकर अङ्ग देवताओं का पूजन-तर्पण कर पुनः देवी की पूजा और तर्पण कर अन्तर्मातृका का जप करके देवी को समर्पित कर स्तुतिपाठ करे। फिर पुष्पशय्या की रचना कर उस पर देवी को बिठाकर मनरूप नर्तक का नृत्य एवं शृङ्गार आदि रसोद्भव ताल-संयुक्त नाना प्रकार के गीतों से साधक को सन्तुष्ट करे। इस प्रकार कामेश्वर सहित कामेश्वरी देवी और अपने में एकभाव की भावना कर साधक सिद्धि का अधिकारी बनता है। इस प्रकार भुक्ति-मुक्तिप्रदायक अन्तर्यजन कहा गया।

जो साधक मन से सहस्र रक्तकमल देवी को अर्पित करता है, वह हजारों करोड़ तथा सैकड़ों करोड़ कल्प तक देवीपुर में स्थित होकर तब पृथ्वी में श्रीमान् राजा होता है और जो पुरुष भगवती को मन से भक्ति एवं श्रद्धा से नैवेद्य देने की इच्छा करता है, वह दीर्घायु तथा सुखी होता है। इसी प्रकार जो मन से देवी की प्रदक्षिणा करता है, वह देवी के घर में वास पाता है और उसे नरकों के दर्शन कदापि नहीं होते। जो व्यक्ति मन से नमन करता है, वह भक्त लोकों को जीतकर शिवलोक में वास पाता है और महान् कहलाता है।

अन्तर्यजन की दूसरी विधि यह है कि विशालबुद्धि साधक यथापूर्व गुरु का ध्यान करे और हृदय में स्थित विमल पुष्कर तीर्थ में अथवा बिन्दुतीर्थ में स्नान करे। ऐसा नित्य जो साधक करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। इस मानव

शरीर में ज्ञानरूप जल से पूर्ण इड़ा-सुषुम्ना रूप नदियाँ बह रही हैं। शिवतीर्थ रूप इन दोनों में ब्रह्मरूप जल से जो सदा स्नान करता है, उस साधक को गङ्गाजल एवं पुष्कर तीर्थ के जल की क्या आवश्यकता? यह स्नान कहा गया। इसके पश्चात् संध्या करनी चाहिये। जिस काल में शिव-शक्ति का समायोग हो, वही कुलनिष्ठों की संध्या है, ऐसा समाधि लगानेवालों का कथन है। चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि के सम्मिलन से झरता हुआ जो परामृत है, उससे परदेवता का तर्पण करना चाहिये। इसे दिव्य तर्पण कहते हैं। अब दिव्य अर्घ्य का साधन कहते हैं—ब्रह्मरन्ध्र के अधोभाग में जो चन्द्ररूप उत्तम पात्र है, कला सार से उसे पूर्ण कर उससे खेचरी का तर्पण करे।

न्यास की सिद्धि के लिये विमल-बुद्धि साधक चतुर्दल आधार-चक्र में 'वं शं षं सं', लिंगमूल में विद्युद्वर्ण षड्दल स्वाधिष्ठान में 'बं भं मं यं रं लं', नाभि में मेघवर्ण दशदल मणिपूर चक्र में 'डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं', हृदय में रक्तवर्ण द्वादशदल अनाहत चक्र में 'कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं', कण्ठ में धूम्रवर्ण षोडशदल विशुद्ध चक्र में 'अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः' एवं भ्रूमध्य में श्वेतवर्ण द्विदल आज्ञाचक्र में 'हं क्षं' वर्णों का न्यास करे। इन अन्तर्मातृका वर्णों का कंठच्छद क्रम से ध्यान एवं न्यास करना चाहिये। फिर षडङ्ग-न्यास साधक करे, जिससे वह देवीमय हो जाता है।

अब तन्त्रानुसार पूजाविधि कहते हैं। विषय पुष्पों से पूजन कर साधक तत्क्षण ही तन्मय हो। तन्मयता ही वास्तविक न्यास है। सोहं भाव से पूजन करे। साधक देवी को भाव-पुष्प प्रदान करे। अब मूलाधार चक्रस्थ वर्णमाला-द्वारा जप करने की विधि कहूँगा। यह माला पचास मणियों की है। शिव-शक्तिरूपी सूत्र में कुंडलिनी शक्ति ग्रथित है। इसकी

अन्तिम कला मेरु 'क्ष' है। प्रत्येक उच्चारण बिन्दु-सहित करना चाहिये। इसके प्रत्येक वर्ण पर अपने इष्टमन्त्र का लोम-विलोम-विधि से एकाग्र मन से जप करना चाहिये और जप पूर्ण होने पर अपने कल्पोक्त विधि से देवी को उसका फल समर्पित करना चाहिये। स्तुतियों के द्वारा सब बार-बार समर्पित करे।

इसके पश्चात् होम-विधि कहते हैं, जिससे चिन्मयता प्राप्त होती है। उत्तम साधक अपने को अपरिच्छिन्न अव्यय की भावना करे और आत्मा, अन्तरात्मा तथा परमज्ञानात्मा—इनका एकीभूत रूप ही चित्कुण्ड चतुरस्र है। आनन्दमय सुरम्य मेखला है, जिसमें तीन बिन्दुमय तीन वलय हैं और अर्धमात्रा योनिरूप ब्रह्मानन्दमय है। सर्वज्ञान-विजृम्भित पर-देवमय सम्विदग्नि में स्थिरचित्त साधक द्रव्य का हवन करे। 'अ' से 'क्ष' तक वर्ण-विराजित शब्दाख्य मातृका रूप है। उसमें समस्त अक्षर हुत हैं। निश्शब्द ही ब्रह्म है। कृत्य-अकृत्य, पाप-पुण्य, संकल्प-विकल्प, धर्माधर्म—इन सबको साधक हवनीय द्रव्य कल्पित करे। नाभिमण्डल में स्थित चिदग्नि में मनरूपी स्रुवा से निम्नलिखित मन्त्रों के आदि में मूलमन्त्र जोड़कर यथाक्रम साधक हवन करे—

नाभि-मण्डल-चैतन्य-रूपाग्नौ मनसा स्रुचा ।
ज्ञान-प्रदीपिते नित्यमक्ष-वृत्तिर्जुहोम्यहम् ।।स्वाहा।।
धर्माधर्म-हविर्दीप्तमात्माग्नौ मनसा स्रुचा ।
सुषुम्ना-वर्त्मना नित्यमक्ष-वृत्तिर्जुहोम्यहम् ।।स्वाहा।।
प्रकाशाकाश-हस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा ।
धर्माधर्मौ कला-स्नेह-पूर्ण-वह्नौ जुहोम्यहम् ।।स्वाहा।।

अन्तर्निरन्तर - निबन्धन - मेधमाने ।
मायान्धकार-परिपन्थिनि सम्विदग्नौ ।।स्वाहा।।
कस्मिंश्चिदद्भुत-मरीचि-विकाशि-भूमौ ।
विश्वं जुहोमि वसुधां, दिशि वावसानम् ।।स्वाहा।।
इदं तु पात्र-भरितं, महोत्ताप-परामृतम् ।
पूर्णाहुति-मये वह्नौ, पूर्ण-होमं जुहोम्यहम् ।।स्वाहा।।

अब महा अन्तर्यजन कहेंगे, जो ब्रह्मयज्ञ-स्वरूप है। ब्रह्मयज्ञ महायज्ञ है। इसे ब्रह्मज्ञानी साधक अपने मन से ही मन को देखकर सदैव करे। जैसे समस्त नदियाँ सिन्धु में ही प्रविष्ट होकर लय हो जाती हैं, उसी प्रकार समस्त शरीर को महा-शून्य में साधक नियुक्त करे। यज्ञकर्ता महायोगी है। इसलिये ब्रह्मयज्ञ करके साधक फिर सब मन्त्रों का जप करे। आत्मस्थ यज्ञ ही सब यज्ञों का फलदाता है। अतः कर्मयज्ञ, मनोयज्ञ, प्राणयज्ञ—ये हुताशन हैं। अब उसे सब यज्ञ वर्जित हैं। सुषुम्ना के भीतर मन्त्रयज्ञ होता है, जो समस्त यज्ञों का फल देता है। ब्रह्माग्नि में ब्रह्मरूप हवि को ब्रह्मकर्ता के द्वारा ब्रह्म को ही अर्पित करके ब्रह्मकर्म समाधि से ब्रह्म में ही मिलकर ब्रह्मत्व प्राप्त करना—यही ब्रह्मयज्ञ कहलाता है। अपने को ब्रह्म जानकर समस्त कार्यों को साधक करता रहे।

२—बहिर्यजन

तन्त्रमार्गानुसार अब हम बहिर्याग का विधान लिखते हैं। उपर्युक्त अन्तर्यजनों में से किसी एक को करने के पश्चात् साधक स्वेष्टदेवतानुरूप सोने, चाँदी, ताम्र, अष्टधातु अथवा शालिग्राम शिला, जिसमें जिसकी जैसी रुचि हो, यन्त्रराज बनावे। श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन, काश्मीर प्रभृत मिट्टी में एवं दर्पण में श्रीयन्त्र बनावे। अथवा कुछ न हो तो गोबर से लिपी हुई शुद्ध भूमि में ही बना लेवे। अथवा भोजपत्र में, स्फटिक के

खण्ड में, रत्न में, कुलशक्ति पर यन्त्र की रचना करे। स्वयम्भू कुसुम, कुण्डगोलोत्थ द्रव्य, रोचना, अगरकेशर, कस्तूरी, मद्य, श्वेत चन्दन—इस मिश्रित गन्ध से यन्त्रराज को लिखे। इससे देवी प्रसन्न होती है। अथवा, स्वयम्भू कुसुम से या कुण्डगोलोत्थ कुसुम से इनमें से केवल एक से ही लिखने से सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अथवा श्वेत और रक्त चन्दन, अगर, कपूर, सिन्दूर, कस्तूरी, गोरोचन, लाक्षा, कुलगोलोद्भव, स्वयम्भूकुसुम, केशर—इस गन्ध से सुवर्ण की लेखनी से, रत्नजटित लेखनी से, पुष्प से, बेल के काँटों से स्वयं चक्रराज को लिखे।

साढ़े-तीन करोड़ तीर्थों के स्नान का फल साधक को अपने इष्टचक्र के दर्शन से प्राप्त होता है। जो साधक यन्त्र का सुरूप-आलेखन न जानकर यन्त्र की पूजा में प्रवृत्त होता है, उसका सब कुछ जगदम्बा हरण कर लेती है। अपराजिता पुष्प में, श्वेतरक्त कनेर के पुष्प में, गुड़हर पुष्प में, द्रोण पुष्प में सदा देवी का निवास रहता है और इनको यन्त्रराज के रूप में ग्रहण कर इनमें चण्डिका का पूजन किया जा सकता है।

उत्तर दिशा की ओर मुँह करके यदि चक्र लिखे तो साधक उसे पूर्व ही जाने। इसी प्रकार अन्य दिशाएँ समझे और पीछे पश्चिम आदि का व्यवहार होगा। यंत्र लिखकर उसे आसन पर रखे। ध्यान रहे कि शीशे, कांसे, रांगे, काठ के पीढ़े या दीवार में यन्त्र की स्थापना कदापि न करे। यन्त्र की स्थापना के पहिले पुष्प रखकर तब उस पर यन्त्र स्थापित करे। पुष्प गन्ध-चन्दनादि से युक्त होना चाहिये। स्वकल्पोक्त विधि से देवी का ध्यान कर अपने से उसके अभिन्न होने की भावना से साधक अपने शिर पर एक पुष्प रखे।

—:❀:—

चौथा उल्लास

१—देवपूजा-भाव

बालाम्बा, सद्याम्बा, भैरवी, कामेश्वरी, कामाख्या, महामाया, शारदा, शैलपुत्री, अम्बिका—इन देवियों का पूजन दक्षिण एवं वामभाव से किसी प्रकार भी कर सकते हैं, सिद्धि प्राप्त होगी किन्तु श्मशानभैरवी, काली, उग्रतारा, उच्छिष्ट-भैरवी, तारा, त्रिपुरसुन्दरी, उन्मुखी, दुर्गा, मर्दिनी, स्वप्न-बोधिनी—इनका पूजन सदैव वामभाव से ही करना चाहिये। अन्यथा दश लाख जन्मपर्यन्त पूजन-जप से भी सिद्धि नहीं मिलती। ब्रह्मा, विष्णु, सदाशिव—ये भी वामभाव से ही उपास्य हैं। विष्णु की वामिका मूर्ति नृसिंह की पूजा दोनों मार्ग से होती है परन्तु वाम से सिद्धि शीघ्र होती है। इसी प्रकार परमात्मा की यावत् बालगोपाल मूर्तियाँ हैं, उनका पूजन भक्ष्य, मांस, आसवलोलुप भाव से ही सदैव सानन्द करना चाहिये। गणेश और वेताल भी वामभाव के नायक कहे गये हैं। भैरव भी तद्वत् अन्य देवता भी तथा चण्डिका देवी के अन्य बालिका रूप—लक्ष्मी, रक्ता, दशभैरवी आदि, सरस्वती की बालिका मूर्ति वाग्भवी—इन सबका पूजन वाम भाव से ही करना चाहिये अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती। साधक भी वामाचारी हो तथा गुरु भी।

२—पञ्चतत्त्व-निर्णय

अब पञ्चतत्त्वों का निर्णय कहते हैं। प्रथम के योग से साधक भैरव होता है तथा दूसरे से ब्रह्म, तीसरे से महाभैरव,

चतुर्थ से भूमण्डल में पूजकों का नायक तथा पञ्चम से परम शिवता को प्राप्त होता है। पञ्चमतत्त्व से पूजन करनेवाला साधक सर्वसिद्धियों का भोक्ता होता है। जो साधक पञ्च-मकारों के बिना देवी की पूजा करता है, उसके जप, हवन, तर्पण सब निष्फल होते हैं और उसके आयु, विद्या, यश एवं धन नष्ट हो जाते हैं क्योंकि मकारपञ्चक ही देवता को प्रिय हैं। मद्य, मांस, मीन, मुद्रा, मैथुन—इन पाँचों को मकारपञ्चक कहा जाता है।

मद्यभेद—सत्ययुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रम से दूध, घी, मधु और पिष्ट से देवी की पूजा करते थे। त्रेता में केवल घी से ही सर्व जाति के जन पूजते थे। द्वापर में मधु से। परन्तु कलियुग में देवी की मद्य से पूजा करनी चाहिये। चारों युगों में तुरीय आसव से सदा देवी का पूजन करना चाहिये। अब तन्त्रमार्गोक्त नाना प्रकार का द्रव्य कहते हैं। प्रथम द्रव्य ऊख के रस का, गुड़ का, पुष्पों का, शहद का एवं फलों का उत्तम होता है किन्तु अन्नोद्भव सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अथवा पत्र, पुष्प, अंकुर, फल, मूल, वल्कल, धान्य—इन सबके रस का, वृक्षों की लताओं के रस का, ऊख के रस का इस प्रकार दश भेद माने हैं। कटहल, मुनक्का, महुआ, खजूर, ताड़, शहद, सीधु, माध्वीक, मैरेय, नारियल, ऊख—इस प्रकार ग्यारह तरह के मद्य भुक्ति एवं मुक्तिदायक हैं। बारहवीं सुरा है, जो सर्वश्रेष्ठ है। महुआ और चावलों की पीठी से बनी हुई पैष्टी सुरा सब सिद्धियों की देनेवाली है। गुड़ की भोग-प्रदात्री है। माध्वी मुक्तिकरी तथा खार्जूरी रिपुनाशिनी और नारियल की लक्ष्मीदायिका, ऊख की सुखवर्द्धिका होती है।

जो साधक असंस्कृत मद्यपान करता है, बलात्कार करता

है और अपने स्वाद के लिये जीववध कर मांस खाता है, वह रौरव नरक में जाता है।

मद्य-शोधन—साधक अपने वामभाग में विन्दु, षट्कोण, वृत्त, चतुरस्रात्मक मण्डल बनाकर सामान्यार्घ जल से उसका प्रोक्षण कर आधार-शक्ति का उसमें पूजन करे। फिर उस पर आधार स्थापित कर उस पर अग्निमण्डल का पूजन करे। फिर सुवर्ण, चाँदी, ताम्र और मिट्टी का लौह-वर्जित कलश स्थापित करे। सुवर्ण का भोगदाता, चाँदी का मोक्षदाता, काँस का शान्तिकारक, मिट्टी का पुष्टिकारक कलश होता है।

जिसका आभ्यन्तरिक भाग पचास अंगुल का हो, सोलह अंगुल ऊँचा हो और जिसका मुँह आठ अंगुल चौड़ा हो—यह कलश का प्रमाण है। पूर्वोक्त कलशों में से यथाशक्ति प्राप्त किसी एक को अस्त्र मन्त्र से धोकर उसे आधार पर रख उस पर सूर्यमण्डल की पूजा कर मूलमन्त्र उच्चारण कर उसे द्रव्य से पूर्ण करे और रक्तपुष्पमाला से उसे विभूषित कर रक्तवस्त्र से वेष्ठित कर रक्तचन्दन का लेप करे। फिर द्रव्य में सोममण्डल का पूजन कर द्रव्य में अमृत की भावना कर उसे इष्टदेवता का स्वरूप समझे। पञ्चसंज्ञक मुद्राओं से भक्तिभाव से प्रणाम करे।

दोनों हाथ की गदोरियां को भूमि पर अधोमुख अँगुलियों को साधी करके रखे, इसे चतुरस्रिका मुद्रा कहते हैं। दोनों मूठियों को अधोमुख करने को संवृत मुद्रा, दोनों पाणितलों को एक दूसरे के अभिमुख सम्पुटाकार मिलाने को सम्पुट मुद्रा कहते हैं—इससे नमस्कार किया जाता है। दोनों कनिष्ठाओं के मूल में दोनों अँगूठों को रखे, फिर दोनों तर्जनियों के ऊपर दोनों मध्यमाओं को; दोनों अनामिकायें और कनिष्ठायें अँगूठों से दबी रहें—इस महामुद्रा को योनिमुद्रा कहते हैं। सम्पुट

मुद्रा बनाकर उसी में दोनों कनिष्ठाओं के मूल में दोनों अँगूठों को लगा देने से सम्पुटाञ्जलि मुद्रा बनती है।

'ह्रां नमः' उच्चारण कर चतुरस्रका, 'ह्रीं नमः' से सम्वृत्त, 'ह्रीं नमः' से सम्पुट, 'प्लुं नमः' से सम्पुटाञ्जलि एवं 'सः नमः' से योनिमुद्रा दिखानी चाहिये। इसके अनन्तर मूलमंत्र का उच्चारण करता हुआ भक्तिपूर्वक द्रव्य को देखे। फिर 'ॐ वं वामदेवाय वौषट्' उच्चारण कर उत्तम यंत्र की पूजा करे। फिर 'ॐ हूँ पशुपतये अस्त्राय हूँ फट्' इस मंत्र से पथिकदेवताओं के बलिमण्डल की पूजा करे। कुम्भ के समीप ही त्रिकोण-भूगृहात्मक मण्डल बनाकर उस पर मद्यमांस आदि संयुक्त बलिद्रव्य रखे। सिंदूर कुंकुम आदि से उसकी पूजाकर 'ह्रीं श्रीं सर्वपथिकदेवताभ्यो नमः' से बलि प्रदान कर पुनः उसे वाम हाथ से उठाकर कलश के ऊपर तीन बार घुमाकर मूलमंत्र उच्चारण-पूर्वक बाहर फेंक दे। इसके पश्चात् हाथ-पैर धोकर कलश के द्रव्य को धूप देकर उसके विकारों का निम्नलिखित मंत्रों से शोधन करे। कलश के ऊपर हाथ रखकर 'ह्रां श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं छुरिकायै अलिशोभिनि विकारानस्य द्रव्यस्य हर हर स्वाहा' इस मंत्र को तीन बार जप कर विकारों को दूर कर फिर चार प्रकार से और शोधन करे। 'फट्' मंत्र से ताड़न करे, 'हुं' से प्रोक्षण करे, मूल से वीक्षण कर 'नमः' से पुनः प्रोक्षण करे।

मूलमंत्र से गंध लेकर तीन बार नाक में लगाकर फिर द्रव्य के मध्य में योनि (त्रिकोण) की कल्पना करे और उसके बीच में 'ह्सौः' की। 'ह्सौः स्हौः नमः' से उसकी पूजा करे। 'ऐं ह्रीं श्रीं आनन्देश्वराय विद्महे सुधादेव्यै धीमहि तन्नोर्धनारीश्वर प्रचोदयात्' इस आनंदगायत्री का दस बार जप करे। फिर 'ॐ ह्रीं परम-प्रकाशिनि परमाकाशशून्यनिवासिनि सूर्यचन्द्राग्निभक्षिणि पात्रं विश विश स्वाहा' इस मंत्र को तीन बार जपे। फिर 'ॐ वां वीं वूं वैं वौं वः

ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः' मंत्र को दस बार जपकर ब्रह्म-शाप-मोचन करे। फिर 'ॐ ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः सुरे कृष्णशापं विमोचय अमृतं श्रावय-श्रावय स्वाहा' इसे दस बार जप कर कृष्णशाप छुड़ावे। फिर 'ॐ शां शीं शूं शैं शौं शः शुक्रशाप-विमोचितायै सुधादेव्यै नमः' मंत्र को दस बार जप कर शुक्रशाप-मोचन करे। अथवा अन्य प्रकार से शुक्रशाप से मुक्त करे। यथा—'ह्रीं कामेश्वरि अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि क्लीं अमृतं श्रावय सौः शापं मोचय ज्ञानं देहि सिद्धिसामर्थ्यं देहि दह दह खेचरीं मुद्रां प्रकटय प्रकटय अस्त्राय फट् स्वाहा' इसे दस बार जपे।

तीनों शापों से मुक्त करने का अन्य प्रकार कहते हैं—

सुराणाममृतं पूर्वं, बलदेवेन धीमता ।
समानीता प्रयत्नेन, पानार्थं वारुणी सुरा ।।
दत्तात्रेयेण मुनिना, शुक्रेण च महात्मना ।
धीमता बलभद्रेण, पुरा पीतोत्थितार्णवात् ।।

इसे तीन बार बढ़कर 'क्रीं ऐं ब्लां ब्लीं ब्लूं ब्लौं ब्लैं ब्लः अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि सुरे शुक्रशापं मोचय-मोचय अमृतं श्रावय श्रावय स्वाहा' इस मंत्र को दश बार जपकर तीनों शापों को मुक्त करे। इसके पश्चात् त्रिशापमोचिनी का जपकर फिर प्रकाश-युक्ता का जप करे। फिर 'ह्रीं श्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि प्रकाशयुक्ते स्वाहा, ह्सौः ह्स् क्लीं ह्सर्रीं ह्सख्फ्रें ह्सर्रीं भगवति ह्सौः कुब्जिके सह्खफ्रें सह्खफ्रें सन्नः घोरेखप्रां खस्प्रीं किल किल बिच्चे ह्सखान्नं ह्सखव्लें ह्सरीं सौः ह्रीं ह्खें' इस मंत्र का जपकर कलश का द्रव्य अमृत बन गया, ऐसी भावना करके फिर पशुपाश-विनाशिनी तिरस्करणी देवी का ध्यान करे। यथा—

नीलं हयं समधिरुह्य पुरः प्रयान्ती,
नीलांशुकाभरण-माल्य-विलेपनाढ्या।

निद्रा - पटेन भुवनानि तिरोदधाना,
खड्गायुधा भगवती परिपातु भक्तान् ।

इस प्रकार ध्यान करके साधक तिरस्करणी देवी के दो मंत्रों का तीन-तीन बार जप करे, जो ये हैं—१ 'ह्रीं श्रीं नमो भगवति माहेश्वरि सर्वपशुजनमनश्चक्षुस्तिरस्करणं कुरु कुरु स्वाहा । २ ह्रीं कामेश्वरि ऐं ग्लैं तिरस्करिणि सकलजनवाग्वादिनि सकलपशुजनमनश्चक्षु-श्रोत्रजिह्वाघ्राण तिरस्करणं कुरु कुरु स्वाहा ।' इसके बाद मंत्रमय हंसपीठ त्रिकोण में अकथादि त्रिपंक्ति से युक्त हलक्ष के मध्य में मण्डित शिवरूप निज गुरुदेव का ध्यान करे ।

अथवा अन्य प्रकार से द्रव्य का शोधन करे । यथा—'ॐ हंसः शुचिसद्वसुरन्तरीक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसत् सद्वतोतिथि सद्व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ ऐं तृप्तोद्भव-सिद्धोद्भव-सर्वज्ञोद्भव-सर्वजनकोद्भवाय अमृताय अमृतनाथाय अमृतकुल-कुम्भाय ऐं फ्रें चल चल पिब पिब कुलकुण्डलिनि अमृत-कुण्डलिनि अमृतं द्रव द्रव निर्झर निर्झर ऐं ह्रीं कुलकुण्डलिनि अमृतं कुरु कुरु स्वाहा ।' प्रथम मंत्र का अथवा दूसरे मंत्र का तीन बार जपकर द्रव्य का शोधन करे । इसके पश्चात् कुण्डलिनी शक्ति को द्रव्य के पान कराने की भावना कर द्रव्य में शिवशक्ति के समायोग से झरित अमृत की भावना करे और तब इस प्रकार संशुद्ध द्रव्य से कलश को पूर्ण करे । इस प्रकार के विधान से साधक द्रव्यशुद्धि करे ।

अब द्रव्यशुद्धि के सम्बन्ध में कालिका के विषय में जो विशेषता है, उसे तन्त्र के अनुसार कहूँगा ।

एकमेव परम्ब्रह्म, स्थूल-सूक्ष्म-मयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्म-हत्यां, तेन ते नाशयाम्यहम् ।।

सूर्य-मण्डल-सम्भूते, वरुणालय-सम्भवे !
अमा-वीज-मये देवि ! शुक्र-शापाद् विमुच्यताम्।।
वेदानां प्रणवो वीजं, ब्रह्मानन्द-मयं यदि ।
तेन सत्येन हे देवि ! ब्रह्म-शापं व्यपोहतु ।।

इन तीनों मंत्रों से सुरा का अभिमंत्रिण करके कालिका देवी को अर्पित करे, तव नैवेद्य-भोगी हो। इस प्रकार तीन प्रकार की द्रव्यशुद्धि कही गई है, जो परम शापमोचक हैं। इनमें से किसी एक को कर साधक द्रव्य में आनंदभैरव-भैरवी का ध्यान करे। यथा—

सूर्य-कोटि-प्रतीकाशं, चन्द्र-कोटि-सुशीतलम् ।
अष्टादश-भुजं देवं, पञ्च-वक्त्रं त्रिलोचनम् ।।
अमृतार्णव-मध्यस्थं, ब्रह्म-पद्मोपरि-स्थितम् ।
वृषारूढं नील-कण्ठं, सर्वाभरण-भूषितम् ।।
आकल्प-खट्वाङ्ग-धरं, घण्टा-डमरु-वादिनम् ।
पाशांकुश-धरं देवं, गदा-मुशल-धारिणम् ।।
खड्ग-खेटक-पट्टीश-मुद्गर-शूल-दण्ड-धृक् ।
खेटक-मुण्ड-हस्तं च वरदाभय-विग्रहम् ।।
लोहितं देव-देवेशं, द्रव्य-मध्ये नियोजयेत् ।
तस्योत्सङ्गे सुरां देवीं, चन्द्र-कोट्ययुत-प्रभाम् ।।
हिम-कुन्देन्दु-धवलां, सर्वायुध-करोद्यताम् ।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं, देव-देवस्य सम्मुखीम् ।।

अथवा अन्य प्रकार से सुधा देवी का ध्यान करे। यथा—

चन्द्रांशु-सदृशीं श्वेतां, वारुणीं ब्रह्म-रूपिणीम् ।
शिरश्चन्द्राद्-विगलन्तीं, ध्यायेत् तां पर - देवताम् ।।

ध्यान करने के अनन्तर द्रव्य के मध्य में 'हसक्षमलवरयूँ आनन्दभैरवाय वषट्' इस मंत्र से आनन्दभैरव का पूजन करे।

फिर 'सहस्रमलवरयीं आनन्दभैरव्यै वषट्' से आनंदभैरवी का पूजन करे। फिर वरुण बीज 'वं' का द्रव्य पर आठ बार जप करके फिर मूलमंत्र का आठ बार जपकर द्रव्य को अमृत समझे। इसके पश्चात् आवाहिनी, स्थापिनी, सन्निधापिनी, सन्निरोधिनी और अवगुण्ठन मुद्रायें दिखाकर तीन तालपूर्वक षडङ्ग की मुद्रायें दिखावे और छोटिका मुद्रा से दिग्बन्धन करके परमीकरण कर धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। देखने से, सूँघने से एवं स्नान से द्रव्यशुद्धि होती है। साधक दाहने हाथ के चुल्लू में द्रव्य लेकर वाम कर की अनामा और अंगुष्ठ से मूलमंत्र उच्चारण करता हुआ पूजाद्रव्यों का सिंचन कर फिर अपने मुँह में बिंदु छोड़े और दोनों करों को आपस में रगड़ कर समस्त शरीर में हाथों को फेर लेवे। इस दिव्य कारण को सुर-समूह ने सानन्द ग्रहण किया है। इसलिये इसका नाम भुवनों में 'सुरा' प्रसिद्ध हुआ है। सुरा के दर्शन मात्र से पाप नष्ट हो जाते हैं और इसकी गन्ध सूँघने से शतव्रत करने का फल प्राप्त होता है। इसके स्पर्श से करोड़ों तीर्थों का फल तथा इसके पान से साक्षात् चार प्रकार की मुक्ति मिलती है। सुरा के आमोद में इच्छाशक्ति, उसके रस में ज्ञानशक्ति, स्वाद में क्रियाशक्ति एवं चित्त का परम शोधन होता है।

पांचवां उल्लास

१—मांस-शोधन

अब तन्त्रक्रम से मैं मांसों को कहता हूँ। जल (मत्स्य), भूचर (पशु) और खेचर (पक्षी) के क्रम से मांस तीन प्रकार के हैं। गो, नर, हस्ति, अश्व, महिष, वराह, अज, मृग आदि आठ का मांस महामांस है। अथवा अज, अश्व, गण्ड, महिष, चमरी, वराह, व्याघ्र, भल्लूक, शशक, कूर्म, कुक्कुट, कृष्णमृग, हरिण, चित्रमृग, नर, गो, शल्लकी, हंस, पारावत, ग्रामकुक्कुट—इन सबकी बलि देना देवी की पूजा में विहित है। इनमें से किसी एक का मांस तर्पण के लिये ग्रहण करे। मांस के दर्शन से सुरादर्शन-जैसा ही फल मिलता है। पितृ-कर्म तथा देवकर्म के सम्बन्ध में वेद में हिंसा विहित है। दूसरे कार्य के लिये प्राणिहिंसा कदापि न करे। मांस के बिना पूजा करने से पाप होता है। गन्ध-पुष्प से पशु का पूजन कर तथा मन्त्र से उस को अभिमन्त्रित कर उसका उत्सर्ग करे। मन्त्र यह है—

शिवोत्कृत्तमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवतां गतः ।
तद्-बुद्धस्व पशो ! त्वं हि माशिवस्त्वं शिवोऽसि हि।।

इसके बाद उसके मांस का चरुपाक करे। कोई कोई साधक कच्चे ही मांस का पूजा में प्रयोग करते हैं। अब मांस का शोधन कहते हैं। मूलमन्त्र के अन्त में 'फट्' मन्त्र जोड़कर उससे मांस का सामान्यार्घ्य के जल से प्रोक्षण करे। वायु-बीज 'यं' से शोषण और वह्निबीज 'रं' से दाहन करे। फिर शिव-शक्ति के संयोग से झरित अमृत से वरुणबीज 'वं' पढ़कर

भावना द्वारा उसे अमृतमय करे। अब उसका चार बार मंत्र पढ़कर शोधन करे। मन्त्र यह है—

ॐ प्रतद्-विष्णुः स्तवने मृगो न भीमः कुचरो गरिष्ठः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधि-क्षियन्ति भुवनानि विश्वाः।।

इसके बाद पूर्वोक्त आवाहनी आदि मुद्राएँ दिखावे। फिर उसके ऊपर सात बार मूलमन्त्र का जप करे।

२—मत्स्य-शोधन

अब मत्स्यों का शोधन कहते हैं। पाठीन, वोदाल, शकुल, शालक, महाशकुल, चित्री, खड्गी, जलवृश्चिका आदि मत्स्य देवीपूजा में विहित हैं। पहले मत्स्य के पक्व मांस का प्रोक्षणादि करे। फिर निम्नमन्त्र पढ़कर उसका शोधन करे—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि-वर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्।।

फिर मुद्राएँ दिखाकर मूलमन्त्र का जप करे।

३—मुद्रा-शोधन

अब मुद्रा का कथन करते हैं। सुपक्व, मनोहर, शर्करादि से पूरित मुद्राएँ देवी की पूजा में विहित हैं। भुने हुए धान्य भी मुद्रा के रूप में ग्रहण किये जाते हैं। मुद्राओं का पूर्ववत् प्रोक्षणादि कर निम्नमन्त्र से उसका शोधन करे—

ॐ तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव-चक्षुराततं।
ॐ तद् विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः समिन्धते विष्णोर्यत् परमं पदम्।।

इस प्रकार शोधन कर पूर्ववत् मुद्राएँ दिखाकर मूलमन्त्र का जप करे।

४—कुलद्रव्य-शोधन

अब कुलद्रव्य तथा शक्तिशोधन कहते हैं। यथाविधि कुल-द्रव्य तथा सुस्नाता, सालंकारा, दीक्षिता शक्ति को लाकर आसन पर बिठावे। अपने कल्प के अनुसार शक्ति के अङ्गों में न्यास करे। मातृकान्यास करने के बाद कलान्यास भी करे। 'ह्रीं' का ललाट में, 'क्लीं' का वदन में, 'ऐं' का हृदय में, 'ब्लुं' का नाभि में और 'स्त्रीं' का गुह्य में न्यास करे। फिर अपने कल्पानुसार ऋष्यादि कर पाद्यादि उपचारों से उसका पूजन करे। 'द्राविणी' का न्यास योनि में करे। फिर मूलमन्त्र का आधार में, हृदय में और भ्रूमध्य में तथा ब्रह्मरन्ध्र में क्रम से न्यास करे। इसके बाद मूर्धा से लेकर पादपर्यन्त मूलमन्त्र का फिर न्यास करे। इसके बाद साधक अपने क्रम के अनुसार कुलसन्ध्या करे। फिर कुलद्रव्य लेकर उसका पूर्ववत् प्रोक्षणादि करे। शोधन का मन्त्र यह है—

ॐ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आसिञ्चातु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ।।
गर्भं धेहि सिनीवालि, गर्भं धेहि सरस्वति !
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर-स्रजौ।।
प्लुं ज्लुं म्लुं ग्लुं स्वाहा अमृते, अमृतोद्भवे!
अमृत-वर्षिणि ! अमृतं स्रावय-स्रावय स्वाहा।।

पूर्ववत् मुद्राएँ दिखाकर मूलमन्त्र का जप करे।

५—अनुकल्प

पञ्चद्रव्यों के अभाव में पूजन का कदापि लोप न करे। अब इनका अनुकल्प कहते हैं।

मद्य के अभाव में साधक ताम्रपात्र में मधु या घृतरहित दधि या कांसे के पात्र में अदरक और गुड़-मिश्रित नारियल

का जल रख उसे मद्य मानकर उससे पूजन करे। गुड़-मिश्रित तक्र में मधु मिला उसे मद्य मानकर देवता का तर्पण किया जा सकता है। अथवा मांसखण्ड, मत्स्यखण्ड और विजया तथा अष्टगन्ध का चूर्ण—इन सबको एक में मिला वटिका बनाकर अवसर पड़ने पर इसे जल में घोलकर तर्पण करे।

मांस के अभाव में लसुन, अदरक, शुण्ठी, सूरन या माषवटक का प्रयोग होता है।

मत्स्य के अभाव में भैंस, गाय, बकरी का दूध और फल-मूल को पकाकर काम में लाते हैं।

कुलद्रव्य के अभाव में देवी-रूप अपराजिता का फूल ले उसके भीतर चन्दन का लेप करे। फिर शिवरूप हयारि का पुष्प लेकर उसके मुख में कारण छोड़े। तब दोनों का सम्मिलन कर यह समझे कि शिव-शक्ति का संयोग हो रहा है। वहीं देवी का पूजन करे। फिर उससे प्राप्त द्रव्य को काम में लावे।

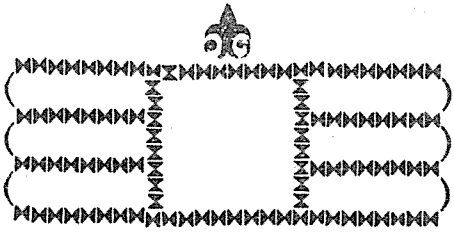

छठा उल्लास

१—विशेषार्घ्य पात्र

अब अर्घ्य विधि का कथन करते हैं—साधक महादेवी की आज्ञा ग्रहण कर अपने तथा देवता के मध्य भूमि में 'ह्रं' युक्त षट्कोण, वृत्त, चतुरस्रात्मक मण्डल बनाकर उसका मूलमंत्र के अन्त में 'फट्' जोड़कर सामान्यार्घ्य के जल से प्रोक्षण करे। तदनन्तर आधार-शक्ति का पूजन कर पीठ देवताओं का पूजन करे। चतुरस्र में पूर्णशैल, उड्डीयान, जलंधर और कामरूप आदि पीठों की पूर्वादि क्रम से पूजाकर 'षट्कोणों' में मन्त्रज्ञानी षडङ्ग की पूजा करे। फिर त्रिकोण में मूलमंत्र से त्रिकोणों की पूजा करने के पश्चात् मध्य में आधारशक्ति की पुनः पूजा करके अस्त्र मंत्र से आधार को धोकर स्थापित करे।

तन्त्रों में आधार त्रिपद अथवा षट्पद या चतुष्पद अथवा वर्तुलाकार कहा गया है। इनमें से किसी एक को स्थापित कर साधक कुलमार्ग से पूजा करे। अब 'ॐ मं वह्निमण्डलाय नमः' मन्त्र से आधार पर वह्निमण्डल का पूजन करे। इसके पश्चात् अग्नि की दश कलाओं का पूजन आधार के चारों ओर करे। यथा—यं धूम्रार्चिषे नमः, रं उष्मायै नमः, लं ज्वलिन्यै नमः, वं ज्वालिन्यै नमः, शं विष्फुलिंगिन्यै नमः, षं सुश्रियै नमः, सं रूपायै नमः, हं कपिलायै नमः, लं हव्यवाहायै नमः, क्षं कव्यवाहायै नमः।' मूलमन्त्र के अन्त में 'फट्' जोड़कर उससे पात्र का प्रक्षालन कर उसे आधार पर रखे।

सोना, चाँदी, पत्थर, कूर्मपृष्ठ, नरकपाल, मिट्टी, नारियल,

शङ्ख, ताम्र, मोती, शुक्ति आदि का पात्र लेना चाहिये अथवा किसी पवित्र वृक्ष के काष्ठ का।

उत्तम पात्र सोलह अंगुल का विस्तृत तथा छः अंगुल का ऊँचा होता है अथवा इसके आधे प्रमाण का या उससे भी आधा; एक अंगुल, डेढ़ अंगुल, छः अंगुल का प्रमाण है किन्तु अति सूक्ष्म, अति स्थूल एवं छिद्रयुक्त पात्र तथा फूटा हुआ पात्र पूजन में न ग्रहण करे। स्व प्रादेश (बीता) प्रमाण का पात्र प्रशस्त माना गया है। इनमें से किसी एक पात्र को त्रिपद पर रखे। पूर्वमार्गानुसार उसकी पूजा करे। फिर उसमें सूर्य-मण्डल की भावना कर 'अं अर्कमण्डलाय नमः' इस मन्त्र से सूर्यमण्डल की पूजा करे। फिर सूर्य की द्वादश कलाओं का पूजन करे। यथा—'कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै नमः, गं फं धूम्रायै नमः, घं पं मरीच्यै नमः, ङं नं ज्वालिन्यै नमः, चं धं रुच्यै नमः, छं दं सुषुम्नायै नमः, जं थं भोगदायै नमः, झं तं विश्वायै नमः, ञं णं बोधिन्यै नमः, टं ढं धारिण्यै नमः, ठं डं क्षमायै नमः।' फिर रक्तचन्दन और सुगन्धित मनोहर पुष्पों से पात्र की पूजा करे। फिर साधक विलोम मातृका पढ़कर अन्त में मूलमन्त्र एवं वरुण बीज का उच्चारण करते हुये कलश के द्रव्य से पात्र के तीन भाग पूर्ण करे तथा एक भाग सामान्यार्घजल से। फिर उसमें दूब, रक्तचन्दन, अक्षत, कुण्ड-गोलोद्भव एवं बिल्वपत्र, मांस, मत्स्य, मुद्रा, नाना सुगन्ध, नवरत्न, इलायची, लौंग, कङ्कोल, जायफर, कपूर, सफेदचन्दन, कस्तूरी, गोरोचन, अगर, केशर, स्वयम्भु कुसुम, अष्टगन्ध आदि छोड़कर द्रव्य में 'उं सोममण्डलाय नमः' मन्त्र से चन्द्र-मण्डल का पूजनकर फिर द्रव्य के चारो ओर निम्न मन्त्रों से चन्द्र की कलाओं का पूजन करे—

अं अमृतायै नमः, आं मानदायै नमः, इं पूषायै नमः, ईं तुष्ट्यै

नमः, उं पुष्ट्यै नमः, ऊं रत्यै नमः, ऋं धृत्यै नमः, ऋं शशिन्यै नमः, लृं चन्द्रिकायै नमः, लृं ज्योत्स्नायै नमः, एं कान्त्यै नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं पीत्यै नमः, औं अङ्गदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नमः।

इसके पश्चात् पात्र के तीर्थ में अंकुश मुद्रा के द्वारा तीर्थों का आवाहन कर पूर्ववत् मण्डल की कल्पना कर पूर्ववत् ही मन्त्रोच्चारपूर्वक आनन्दभैरव का एवं आनन्दभैरवी का पूजन करे। फिर अपने इष्टदेवता का आवाहन करे और आवाहनादि मुद्रायें स्वकल्पोक्त विधि से दिखाकर इष्टदेव का पूजन करे। फिर पूर्ववत् षडङ्ग तथा त्रिकोण का पूजन करे। फिर पात्र के द्रव्य में अकथादि रेखाओं के मध्य में मायाबीज को भावना के द्वारा लिखे। फिर चतुरस्र के मध्य में 'हसौः' लिखे। फिर साधक पञ्चरत्नों की पूजा करे। यथा—'ग्लूँ गगनरत्नेभ्यो नमः' पूर्व में। 'स्लूँ स्वर्गरत्नेभ्यो नमः' दक्षिण में। 'म्लूँ मर्त्यरत्नेभ्यो नमः' पश्चिम में। 'प्लूँ पातालरत्नेभ्यो नमः' उत्तर में। 'न्लूँ नागरत्नेभ्यो नमः' मध्य में। फिर अकथ की त्रिरेखाओं में वाग्भव बीज के अन्त में 'दिव्यौघगुरु श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' से दिव्यौघ गुरुओं की तथा सिद्धौघ मानवौघ गुरुओं की पूजाकर साधक स्वेष्ट मूलमन्त्र का जप करे। फिर पात्र के ऊपर दक्षकर रखकर—

अखण्डैक-रसानन्द-करे, पर-सुधात्मनि! ।
स्वच्छन्द-स्फुरणामत्र, निधेह्याकुल-रूपिणि!।।
अकुलस्थामृताकारे, शुद्धि-ज्ञान-करे, परे! ।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् , वस्तुनि क्लिन्न-रूपिणि! ।
तद्-रूपेणैकरस्यं च, दत्वा ह्येतत्-स्वरूपिणि! ।
भूत्वा परामृताकारं, मयि चित्-स्फुरणं कुरु ।।

इन तीनों मन्त्रों से अभिमन्त्रित करने के पश्चात्—

ब्रह्माण्ड - खण्ड - सम्भूतमशेष - रस - सम्भवम्।
आपूरितं महा - पात्रं, पीयूष - रसमावह ।।

इससे भी अभिमन्त्रित करे। फिर ऐं प्लूँ क्लीं जूँ सः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं श्रावय श्रावय स्वाहा' इसका जपकर 'वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लेदिनि महामोक्षं क्लेदय क्लेदय कुरु कुरु क्लीं सौः मोक्षं कुरु कुरु। स्हौं ह्सौर्नमः' इन मन्त्रों से भी अभिमन्त्रित करे।

इसके पश्चात् विशेषार्घ पात्र के तीर्थ से साधक अपने शिर में आनन्दभैरव और आनंदभैरवी का पूजन-तर्पण तीन तीन बार कर फिर पूर्वोक्त चतुरस्रादि मुद्रायें तथा शङ्ख-मुद्रा, मत्स्य एवं धेनुमुद्रा दिखाकर अवगुण्ठन मुद्रा से अव-गुंठित करे। फिर योनिमुद्रा से नमस्कार कर छोटिका मुद्रा से तीन ताल देकर दिग्बन्धन करे। फिर मूलमन्त्र का आठ बार जप कर पात्र को इष्टदेवता-स्वरूप समझे।

दाहने हाथ से वाम कर के अँगूठे को पकड़े। फिर मुट्ठी और अँगूठे को उत्तान करके फैलावे और वाम कर की शेष अँगुलियाँ उसी प्रकार संयुक्त रूप में फैली रहें तथा दाहने अँगूठे से लगी रहें। इसे शङ्खमुद्रा कहते हैं। दाहना हाथ अधोमुख रहे और वाम भी। फिर एक दूसरे के ऊपर सभी अँगुलियाँ मिली हुई रहें और सीधी रहें। अँगूठों को किंचित् चलाये, इसे मत्स्य मुद्रा कहते हैं।

२—अन्यान्य पात्र

विशेषार्घ स्थापित करने के पश्चात् शङ्ख एवं वीरपात्र की स्थापना करे और श्रीविद्योक्त विधि से उनका पूजन करे। विसर्जन करने के पूर्व काल तक उन्हें न तो उठावे और न उस

स्थान से खिसकावे ही। विशेषार्घ से सामान्यार्घ में बिंदु-विक्षेप कर देव्यर्घ और कलश के मध्य भाग में अन्य पात्रों की स्थापना करे। कलश के समीप गुरुपात्र, फिर उसके पश्चात् भोगपात्र, फिर शक्तिपात्र, फिर योगिनी पात्र, फिर बलिपात्र, फिर पाद्य एवं आचमनीय पात्र की क्रमपूर्वक स्थापना करे।

नव पात्र उत्तम, सात पात्र मध्यम, कोई कोई मंत्रज्ञ पाँच पात्रों को मध्यम कहते हैं। तीन पात्र अधम कहे जाते हैं। एक पात्र की स्थापना कदापि न करनी चाहिये। देवीपात्र, गुरुपात्र और भोगपात्र ये तीन पात्र कहे जाते हैं। पूजापात्र और बलि पात्र मिलकर पाँच पात्र होते हैं। शक्तिपात्र, वीरपात्र मिलकर सात पात्र होते हैं। योगिनी पात्र, पाद्य तथा आचमनीय पात्र मिल कर नव पात्रों की विधि पूर्ण होती है।

अब इनकी स्थापना की विधि कहते हैं—प्रथम कुम्भ के दक्षिण भाग में त्रिकोण वृत्त-भूगृहात्मक मंडल बनावे। फिर पूर्ववत् प्रोक्षणादि कर आधार रखे। उस पर वह्निमण्डल की पूजा कर पात्र को धोकर आधार पर रखे। पात्र में सूर्यमण्डल का पूजन कर उसे कलशामृत से पूर्ण करे। फिर द्रव्य में सोम-मण्डल की पूजा कर उसमें कुंडगोलोद्भव द्रव्य और पुष्प, गन्ध, चंदन छोड़े। फिर द्रव्य में षट्कोण. वृत्त, भूपुर की मानसिक रचना कर षट्कोणों में षडङ्गों की पूजाकर पूर्ववत् मुद्रायें दिखाकर छोटिका मुद्रा से दिग्बंधन करे और आठ बार मूलमंत्र का जप कर विशेषार्घ से बिंदुप्रक्षेप करे तथा वाम कर की तत्वमुद्रा से दिव्यौघ, सिद्धौघ एवं मानवौघ गुरुओं का नामोच्चारपूर्वक साधक अपने शिर में तीन-तीन बार तर्पण कर फिर स्वगुरु, परमगुरु एवं परमेष्ठि गुरुओं का तर्पण करे। फिर विशेषार्घ द्रव्य से साधक अपने हृदयकमल में पाँच या सात बार तत्वमुद्रा द्वारा इष्टदेवता का तर्पण करे।

इसके अनन्तर गुरुपात्र के दक्ष भाग में साधक भोगपात्र स्थापित करे और पूर्ववत् पात्र की स्थापना कर उससे तत्व-शुद्धि करे। भोगपात्र के अमृत से दोनों हाथों का मार्जन कर दक्ष हाथ की हथेली में वृत्तसहित नवयोनिमय यंत्र लिखे और उसमें शुद्धि के चार टुकड़ों को रखे। फिर 'ह्रीं श्रीं शिवशक्ति-सदाशिवविद्याकलात्मने अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ऐँ (मूलं) आत्मतत्वेन स्थूलदेहं शोधयामि स्वाहा' इस मंत्र को पढ़ते हुये वाम हाथ के अङ्गुष्ठ, मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियों से सबसे नीचे के शुद्धिखण्ड को उठा कर खा जाय।

इसके पश्चात् 'ह्रीं श्रीं मायाकलानियतिकलात्मशुद्धविद्यारागपुरुषात्मने कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं क्लीं (मूलं) विद्यातत्वेन सूक्ष्मदेहं शोधयामि स्वाहा' यह पढ़ दूसरे शुद्धिखण्ड को उठाकर खा जाय।

फिर 'ह्रीं श्रीं प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वावाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवाय्वग्निसलिलभूम्यात्मने यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं सौः (मूलं) शिवतत्वेन परदेहं शोधयामि स्वाहा' यह पढ़ तीसरा शुद्धिखण्ड पूर्ववत् उठाकर खा जाय।

फिर 'ह्रीं श्रीं शिवशक्तिसदाशिवविद्याकलात्मने मायाकलाविद्यारागकालनियतिपुरुषात्मने प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवाय्वग्निसलिलभूम्यात्मने अं आं...कं खं...यं रं...लं क्षं ऐं क्लीं सौः (मूलं) सर्वतत्वत्रयान्वितं जीवं शोधयामि स्वाहा' यह पढ़ चतुर्थ शुद्धिखण्ड पूर्ववत् उठाकर खा जाय।

इसके बाद—'ॐ आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि। योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा। ॐ तामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं

वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु मां। अवतु वक्तारम् स्वाहा। ॐ छन्दसामृषयो गावो यच्छन्दो ह्यमृता भुवसान्द्रोः मेधया स्पृणोतु भुवि स्रुवं मेणोपायतु स्वाहा।' इन मन्त्रों का पाठ करने के पश्चात् वस्त्र से दोनों हाथों तथा देह को पोछकर हाथों से समस्त शरीर को शुद्ध करे। फिर हाथों को धो डाले।

अथवा—'ॐ प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्ताम् ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा। ॐ पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशानि मे शुध्यन्ताम् ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा॥ ॐ प्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनःश्रोत्राणि मे शुध्यन्ताम् ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा॥ ॐ त्वक्चक्षु र्जिह्वाघ्राणवचांसि मे शुध्यन्ताम् ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा॥ ॐ पाणिपादपायूपस्थ शब्दा मे शुध्यन्ताम् ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा॥ ॐ स्पर्शरूपगन्धरसाकाशानि मे शुध्यन्ताम् ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा। ॐ वायुतेजःसलिलभूम्यात्मानो मे शुध्यन्ताम् ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा॥' इन सात मन्त्रों को तत्वशुद्धि के लिये पढ़े।

तत्त्वशुद्धि करने के पश्चात् साधक शक्तिपात्र, योगिनीपात्र, वीरपात्र, बलिपात्र, पाद्यपात्र एवं आचमनीय पात्र स्थापित करे। योगिनी पात्र के तत्त्व से रश्मिवृन्दों का, बलिपात्रामृत से वटुकादिकों का तर्पण करे। जिन पात्रों का अभाव हो, उनका तर्पण सामान्यार्घ के तत्त्व से करे। देवीपात्रामृत-विन्दु को पूजा के द्रव्यों पर छिड़क कर और अपने ऊपर सींच कर अपने को देवता स्वरूप भावित करे। इसके पश्चात् भोग-पात्रामृत-विन्दु को स्वीकार करे।

३—बलि-पञ्चक

अब बलिपञ्चक की उत्तम विधि कहते हैं। दक्षिण में बटुक को, योगिनियों को उत्तर में, सर्वभूतों को मध्य में, राज-

राजेश्वर को पूर्व में तथा पश्चिम में क्षेत्रपाल को बलि देनी चाहिये।

दक्षिणादि चारों दिशाओं में पूर्ववत् मण्डल बनाकर पूर्ववत् ही प्रोक्षण कर वटुक का ध्यान निम्न प्रकार करे—

कर - कलित - कपालः, कुण्डली - दण्ड - पाणिः।
तरुण - तिमिर - नील - व्याल - यज्ञोपवीती ।।
क्रतु - समय - सपर्या - विघ्न - विच्छेद - हेतुः ।
जयति वटुक-नाथः, सिद्धिदः साधकानाम् ।।

इस प्रकार ध्यान कर वाम कर के अंगुष्ठ एवं अनामा से बलिपात्र को मण्डल पर रखे। 'ॐ ह्रीं श्रीं देवीपुत्र वटुकनाथ पिंगलजटाभारभास्वर पिंगल त्रिनेत्र इमं बलिं पूजां गृह्ण गृह्ण स्वाहा— इस मन्त्र से वटुक को बलि देवे।

फिर योगिनियों का ध्यान करे। यथा—

योगिन्य : काम-रूपा निखिल-गुण-युतास्तप्त-कान्त-स्वभावा।
मत्ता कङ्काल-माला-कलित-कुच-तटी रक्त-वस्त्रोत्तरीयाः।।
लिङ्गं पाशं कपालं शृणिमपि-दधतः सु-स्मिताः सु-प्रसन्ना।
भक्तानां साधकानामभिलषित-फलं दीयमानाः सु-वेशाः।।

यह ध्यान कर—'ॐ ह्रीं श्रीं सर्वसिद्धियोगिनीभ्यः सर्वाभ्यः मातृकाभ्यश्च' इस मन्त्र से योगिनियों को बलि देवे।

इसके अनन्तर—'ॐ ह्रीं सर्वभूतेभ्यः सर्वभूतपतिभ्यः नमः' इससे सर्वभूतों को बलि देवे। फिर क्षेत्रपाल का ध्यान करे। यथा—

निर्वाणं निर्विकल्पं निरुपम-सकलं निर्विकारं क्षकारम्।
हूङ्कारं वज्र-दंष्ट्रं हुत-वह-वदनं रौद्रमुन्मत्त-भावम् ।।

फट्-कारं बद्ध-नागं भृकुटि-तट-मुखं भैरवं शूल-पाणिम् ।
खट्वाङ्गं व्योम-नीलं डमरुक-सहितं क्षेत्र-पालं नमामि।

इस प्रकार ध्यान कर—'ॐ ह्रीं श्रीं क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्व-स्थान क्षेत्रपाल इमं बलिं पूजां गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इस मन्त्र से क्षेत्रपाल को बलि दे।

मध्य में राजराजेश्वर को बलि दे। पश्चात् बलि- पात्रामृत से वटुकादि का तर्पण करे। अथवा व्यापक मंडल बनाकर एक ही स्थान में सभी को बलि प्रदान करे। साधक के वामभाग में ही बलिपञ्चक कार्य करने से सब विघ्न नष्ट होते हैं।

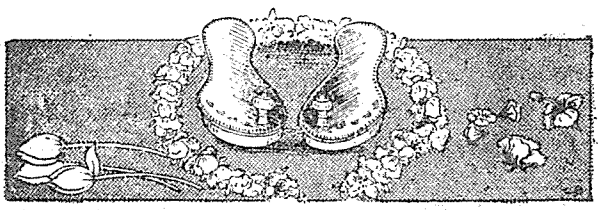

सातवाँ उल्लास

१—पूजारम्भ

पूजा के प्रारम्भ में, जप के आदि में और अन्त में तथा पूजा के अन्त एवं अग्निकार्य के अन्त में तीन प्राणायाम करना चाहिये। प्राणायाम और षडङ्ग पूजन करके साधक स्वकल्पोक्त विधि से पीठपूजा करे। साधक स्वकल्पोक्त विधि से अपने हृदय-कमल में समाहित चित्त से देवी का ध्यान करे और फिर जैसे कोई एक द्वीप से दूसरे में जाता है, उसी प्रकार हृत्कमल से तेजोमयी महादेवी को नासापुट-मार्ग से पुष्पाञ्जलि में और फिर यंत्र में लावे। फिर आवाहन्यादि मुद्राएँ दिखावे।

दोनों हाथों की ऊर्ध्वमुख अञ्जलियों को अधोमुख करने से आवाहनी तथा उसी को ऊर्ध्वमुख करने पर स्थापिनी मुद्रा बनती है। दोनों हाथ की बँधी हुई मूठियों को मिलित रूप में रखने से सन्निधापिनी तथा मूठियों के भीतर अँगूठों को दबा कर उन्हें अधोमुख करने पर सन्निरोधिनी मुद्रा बनती है। इसी मुद्रा में यदि तर्जनी सीधी कर दी जाय तो अवगुण्ठन मुद्रा बनती है। इसको देवता के चारों ओर घुमाकर देवता के अङ्ग में षडङ्ग सकलीकरण न्यास किया जाता है। परस्पर दोनों हाथों के अँगूठों को ग्रथित कर शेष अंगुलियों को सीधी फैला देने से महामुद्रा बनती है, जिससे विद्वान् साधक परमीकरण करते हैं। दोनों हाथों की अंगुलियों को नीचे की ओर करके दोनों मध्यमाओं, दोनों तर्जनियों तथा दोनों अनामिकाओं को दोनों कनिष्ठाओं से संयुक्त करे तो धेनुमुद्रा बनती है। इससे

साधकजन पूजन में खाद्य एवं पेय पदार्थों को अमृतमय करते हैं।

स्वकल्पोक्त विधि से साधक मुद्रायें प्रदर्शित कर छोटिका मुद्रा के द्वारा तीन ताल से दिग्बंधन कर प्राणप्रतिष्ठा के मंत्र से लेलिहान मुद्रा के द्वारा यंत्र पर हाथ रखकर अथवा पाँच कुशों से प्राणप्रतिष्ठा करे। दक्ष कर की तर्जनी, मध्यमा और अनामा को सीधी करके अधोमुख करे और अनामा के ऊपर अँगूठे को रखे तथा कनिष्ठा को सीधी फैला देने से लेलिहान मुद्रा बनती है। यह जीवन्यास में प्रयुक्त होती है।

फिर साधक मूलमंत्रोच्चारपूर्वक सामान्यार्घ्य जल से तीन बार यंत्र का सिंचन करे। इसे देवशुद्धि कहते हैं।

२—उपचार विधान

इसके पश्चात् षोडशोपचारों से देवी की पूजा करे। आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, पुनराचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वन्दना आदि कृत्य षोडशोपचार हैं। अथवा पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वसन, आभरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, अर्चना, स्तोत्र और तर्पण ये षोडशोपचार हैं। अथवा अर्घ्य, पाद्य निवेदन कर फिर आचमन, मधुपर्क, पुनराचमन, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य ये दशोपचार हैं। गंधादि नैवेद्यांत पञ्चोपचारिका पूजा कही जाती है। उपर्युक्त उपचारों को क्रम से पण्डितों ने उत्तम, मध्यम एवं अधम संज्ञाएँ दी हैं। समस्तोपचार के अभाव में केवल पुष्प और जल से, इसके अभाव में केवल पत्र से, इसके अभाव में श्वेत सरसों से, यह भी न तो अक्षत से, अक्षताभाव में दूर्वा से, दूर्वाभाव में जल से, जलाभाव में मन से पूजन करना चाहिये। मूलमंत्र के

अन्त में चतुर्थी-विभक्ति-सहित देवता का नाम, फिर देय द्रव्य का उच्चारण करके 'नमः' जोड़कर पाद्य और 'स्वाहा' लगाकर अर्घ्य प्रदान करे। उक्त प्रकार ही वारुण बीज से आचमन और मधुपर्क देवे। 'वषट्' मंत्र से गंध और 'वौषट्' मंत्र से पुष्प प्रदान करे। 'निवेदयाम्यहं' जोड़कर साधक सब पेय द्रव्य मुख में प्रदान करे। पाद्यादिक देकर स्नानीय निवेदन करे। फिर सुन्दर पादुकाएँ देकर रक्तवर्ण सुरम्य स्नानीय मंदिर में नाना प्रकार के रत्नों से जटित स्वर्णमय सिंहासन संयुक्त महादेवी को लाकर साधक मन से घृत का उद्वर्तन निवेदन करे। इसके पश्चात् यह भावना करे कि सहस्रों देवकन्याओं के द्वारा दिव्य सुगंधित तैल लगाया जा रहा है; सुवर्ण के हजारों घटों से सुगंधित जल से भक्तवत्सल भवानी का आसिंचन हो रहा है। फिर असंख्य नागकन्याओं, किन्नरकन्याओं तथा अप्सरा-गणों के द्वारा विशुद्ध सहस्रगंधराज-संयुक्त नाना तीर्थोदकों से एवं पञ्चामृत और पञ्चगव्य से स्नान करावे। पुनः नारिकेल जल से, ईख के रस से, फिर सप्तमृत्तिका-संयुक्त शीतल जल से, फिर शीतलोष्णोदक से, रत्नोदक से और सुवासित जल से देवी को स्नान करावे।

'सहस्रशीर्षा' मंत्र से और 'पावमान्या' मंत्र से भृङ्गाराष्टक-कुम्भों से देवी को स्नान कराकर फिर विशुद्ध वस्त्रों से अङ्ग-माजन करावे। रुई का, वल्कल वस्त्र, वृक्ष का और कौषेय वस्त्र देवी को प्रिय है। परन्तु रक्तवर्ण का कौषेय वस्त्र महादेवी को विशेष प्रिय है। पीताम्बर के सहित कौषेय वस्त्र अपने इष्टदेव को साधक प्रदान करे। अन्य समस्त देवताओं को विचित्र वर्ण के दिव्य वस्त्र देने चाहिये किन्तु नीलरक्त वस्त्र सर्वत्र वर्जित है। जिस वस्त्र में अनेक रङ्ग अधिक हों और लग्नहीन हो, उसे देवता को न देना चाहिये।

वस्त्र महादेवी को दे अन्य देवताओं को नहीं। रक्त वस्त्र, रक्त-माल्य, रक्ताभरण देकर गंध, चंदन, सिह्लक आदि निर्मित अङ्ग-लेप से अङ्गलेपन करना चाहिये। पुनः मनोरम पादुकाएँ देकर साधक यंत्र में देवता को लाकर समाहित होकर नमस्कार करे। फिर पाद्यादिक विधिपूर्वक पूजन करे। यथासमयोत्पन्न फल, पुष्प, पत्र देकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। अधोमुख फल देवता को न देना चाहिये।

ज्ञानमुद्रा से परमेश्वरी का पूजन करे। अंगुष्ठ और तर्जनी के संयोग से ज्ञानमुद्रा बनती है। साधक मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठाग्र से पूर्ववत् मूलमन्त्र से विमल गंध दे। फिर गंध की भाँति ही मध्यमा और अनामा के मध्य पर्व में अंगुष्ठाग्र संयुक्त कर धूप प्रदान करे तथा मूलमंत्र-संयुक्त गायत्री से तीन बार उसका उत्तोलन करे। अनामिका और अंगुष्ठ के योग से नैवेद्य अर्पित करे। साधक अन्यान्य समस्त वस्तुएँ ज्ञानमुद्रा से सदैव समर्पित करे।

दधि, मधु और घृत के सम्मिश्रण को मधुपर्क कहते हैं। फिर मधु से युक्त पायस और कृशरान्न (खिचड़ी) प्रदान करे। पिष्टक, लड्डू, दूध, दही और फल देने के पश्चात् कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल प्रदान करना चाहिये। प्रत्येक उपचार के अनन्तर जल देता जाय। पुनः माला, गंध, चंदन, कमल पुष्प, दर्पण, चामर, छत्र और पादुका आदि निवेदन करना चाहिये। इस प्रकार श्रेष्ठ साधक विधिवत् पूजन कर तत्वमुद्रा के द्वारा वाम कर की अनामा और अंगुष्ठ के योग से सर्वदा देवता का तर्पण करे। अंगुष्ठ में भैरव तथा अनामा में चण्डिका का सदा निवास रहता है। इसलिये इन्हीं अँगुलियों से कुल संतति का तर्पण करना उचित है।

साधक इस प्रकार कुल द्रव्यों से यथाविधि देवेशी को तृप्त करके फिर यथेच्छापूर्वक आठ बार अथवा एक बार तर्पण करे। एक हाथ से पूजन और तर्पण कदापि न करे। महादेवी का तर्पण करने के पश्चात् अपना क्रम करे। सर्वदा विहित पुष्पों के द्वारा देवता को अपने समीप लाना चाहिये। पूजाकाल में देवता के ऊपर हाथ न घुमाना चाहिये।

देवी की आज्ञा लेकर अङ्ग-देवताओं की पूजा करनी चाहिये। धीर साधक गुरुकुल एवं रश्मिवृन्द का ध्यान कर स्व-स्व-स्थान में उन्हें आवाहित कर उनका पूजन करे। दिव्यौघ, सिद्धौघ और मानवौघ गुरुओं की पूजा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिये। यदि गुरुओं के नाम ज्ञात न हों तो गुरुत्रितय और चतुष्टय अर्थात् गुरु, परमगुरु, परात्पर गुरु तथा परमेष्ठि-गुरु ये शुभ कहे गये हैं।

न जानामि गुरोर्नाम, वंश - शुद्धिं कदाचन ।
त्वत्-पादाम्बज-रेणूनां, कणमादेहि दासताम् ।।

इस स्तव से स्तुति करके उसमें यदि साधक अपने गुरु का नामोच्चारपूर्वक पूजा करे तो यथोचित पूजा होती है। पूर्ववत् तर्पण करके फिर रश्मिवृन्द का पूजन करे। साधक को चाहिये कि वह सावधानी से प्रयत्नपूर्वक यथाक्रम प्रत्येक देवता को यथा स्थान पर आवाहित करके उनका पूजन और तर्पण करे।

इसके पश्चात् ब्रह्माणी आदि अष्ट शक्तियों का पूजन एवं तर्पण करे। पुनः विस्तृत उपचारों से देवी की पूजा करे। पहले चाँदी अथवा लकड़ी का आसन दे। फिर मण्डप के उत्तर भाग में वस्त्र चर्म का अथवा कौशेय, जो भी बन पड़े दे। फिर पाद्य, अर्घ्य दे। श्यामवर्ण की दूर्वा, कमल, विष्णु-

कांता, गध, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सरसों इत्यादि वस्तु-निर्मित अर्घ्य सम्पूर्ण देवताओं को देना चाहिये। केवल जल से आचमन कराना चाहिये। यदि सुगंधित जल से आचमन कराया जाय तो अति श्रेष्ठ माना गया है। अर्घ्यादिक के पश्चात् गन्धाष्टक निवेदन करना चाहिये। चन्दन, अगर, कर्पूर, चोर, केशर, गोरोचन, जटामाशी, कपिजटा—इस मिश्रण को विद्वानों ने देवी का गन्धाष्टक माना है। इसके अनन्तर अनेक प्रकार के पुष्प, वसन, आभरण और गन्ध-चन्दन मिश्रित माला महादेवी को अर्पित करना चाहिये।

फिर साधक सर्वाङ्ग लेप और धूप दे। खस, श्वेत चन्दन, कूट, अगर, गूगल, घी, मधु आदि निर्मित धूप चण्डिका को अति प्रिय है। अथवा हर, नागरमोथा, नख, जटामाशी, लाख, छरीला, देवदारु, कूट, गुड़, धूप इन वस्तुओं की धूप को दशांग धूप मुनियों ने कहा है। अथवा अगर, खस, गूगल, शक्कर, मधु, चन्दन, घी को मिलाकर धूप दे। अथवा केवल गूगल की धूप या अगर की ही दे। उपर्युक्त किसी एक को शास्त्रमार्गानुसार देवता को निवेदन कर धूपपात्र को भूमि पर न रखकर किसी आधार या घट में रखना चाहिये।

इसके पश्चात् पहले घी का फिर तिल के तेल का दीप जलाना चाहिये। सरसों के तेल का या फल के तेल का या कमलगट्टे के तेल का दीपक श्रेष्ठ माना गया है—'ॐ जयध्वनि-मातः स्वाहा' इस मन्त्र से घण्टे की पूजा करे और इसी मन्त्र का उच्चारण कर उसे बजावे भी। धातु या लकड़ी या मिट्टी का दीपाधार होना चाहिये और उसी पर दीप प्रदान करे। भूमि पर दीपक न जलाना चाहिये। इस प्रकार देवता के नेत्र-

रञ्जन के लिये साधक दीप प्रदान करे। घृत का दीपक साधक अपने दक्ष भाग में तथा तेल का वाम भाग में स्थापित करे। फिर कर्पूर-मिश्रित बत्तियों से संयुक्त घृत की दीपमालिका अथवा सरसों या तिल तैल की ही जलाकर देवता के चारों ओर दिखाकर आधारों पर रख दे। फिर कुलदीप दे। सुवर्ण या चाँदी अथवा काँस के पात्र में कुंकुम से अष्टदलकमल बना कर उसमें साधक यव, गेहूँ, दूध आदि की बनी हुई खीर को आठों दलों में और मध्य में रखे। तब उनमें नौ दीपक जला कर रखे। फिर मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर सात बार उत्तोलन कर नौ बार घुमा कर मूलमन्त्र पढ़ता हुआ महादेवी का नीराजन करे। फिर साधक देवता को चक्रमुद्रा दिखावे। वाम कर की वृद्धा अँगुली के गर्भ में कनिष्ठा और दक्षिण हस्त की कनिष्ठा के गर्भ में जोड़कर फिर वाम और दक्षिण अंगुष्ठों का संयोग करने से चक्रमुद्रा बनती है। उपर्युक्त प्रकार से कुलदीप प्रदान कर साधक देवता को नैवेद्य अर्पण करे।

साधक तैजस पात्र में अथवा पाषाणमय या यज्ञ संबन्धी काष्ठ के पात्र में या कमल-पत्र में नैवेद्य की कल्पना करे। सर्वाभाव में मृण्मय पात्र में अथवा साधक अपने हाथ में ही लेकर नैवेद्य प्रदान कर सकता है किन्तु वाल्कल पात्र में अथवा लौह पात्र में कदापि नैवेद्य न दे। समयानुकूल जो पात्र उपलब्ध हो जाय, उसी में नैवेद्य देनी चाहिये। अर्घ्यपात्र के अतिरिक्त किसी अन्य पात्र में स्थित जल को देवी नहीं ग्रहण करती। नैवेद्य षड्रसपूर्ण होना चाहिये और नाना भाँति के फल भी उसमें रहने चाहिये। अनेक प्रकार के द्रव्य देवी को प्रयत्नपूर्वक देकर फिर मद्य, मांस, मत्स्य और मुद्रायें प्रदान करनी चाहिये। भाँति भाँति के अन्न के पदार्थ तथा रम्य विविध व्यञ्जन—कषाय, तिक्त, कटु और मधुर रस संयुक्त

शर्करा-समन्वित परमान्न और शक्कर, दूध, खाँडयुक्त पिष्टी पदार्थ एवं दूध, दही, तक्र, नवनीत, शक्कर, शक्कर के लड्डू आदि नाना प्रकार के चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, भक्ष्य, भोज्य देवी को निवेदन करना चाहिये। यदि साधक पूर्वकथित पदार्थ साक्षात् न दे सके तो मानसिक ही दे किन्तु कर्म का लोप न करे। फिर चुल्लुक देकर प्राणमुद्रा दिखावे।

वृद्धा, अनामा और कनिष्ठा के संयोग से प्राणमुद्रा; वृद्धा, मध्यमा और तर्जनी से अपान; वृद्धा, अनामा और मध्यमा से व्यान तथा कनिष्ठा-रहित सब अँगुलियों से उदान एवं सम्पूर्ण अँगुलियों के संयोग से समान मुद्रा होती है। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान प्रत्येक शब्द को चतुर्थ्यन्त उच्चारण कर अन्त में 'स्वाहा' शब्द कहते हुए मुद्रायें दिखावे और वाम कर में ग्रासमुद्रा ग्रासवत् कही गई है। पुनः साधक देवी को आचमन दे। फिर स्वयम्भू कुसुम, कुण्डगोलोत्थ, रोचन, अगर, कस्तूरी, केशर, लालचन्दन प्रदान करे। फिर गन्ध, पुष्प, माला, रक्तपुष्प, आभूषण, सिन्दूर, काजल, महावर और पदगुच्छ प्रदान करे। फिर द्रोण, अपराजिता, कनेर और गुड़हल आदि पुष्प प्रदान करे। जवा पुष्प के प्रदान करने से रेशमी वस्त्र के देने का फल मिलता है। अपराजिता पुष्प का माहात्म्य इतना अधिक है कि उसे कोई कह नहीं सकता। फिर कर्पूर युक्त ताम्बूल प्रदान करे। इसके अनन्तर साधक गन्ध, चन्दन-संयुक्त पुनः माला प्रदान करे। फिर दर्पण, पादुका, छत्र, चामर और व्यञ्जन आदि देकर बलिदान से चण्डिका को सन्तुष्ट करे।

३—बलिदान

साधक यत्नपूर्वक बलि दे किन्तु स्वयं न दे। तदनन्तर साधक धूप, दीप देकर किसी पात्र में हृदयोद्भव रुधिर

को लेकर जल, सेंधा नमक, शक्कर और मधु मिलाकर महादेवी को प्रदान करे। देवता के नाभिप्रदेश के ऊपर वाग्भव बीज से अथवा शक्तिबीज से साधक रुधिर का अभ्युक्षण करे। फिर तीन पुष्पांजलियाँ देकर अपने देवता को तर्पण करावे।

४—मन्त्र-जप

इसके अनन्तर साधक स्वकीय मन्त्र की शुद्धि सम्पादित करे। यथा—मातृका वर्ण एवं मूलमन्त्र के अक्षरों को लेकर क्रम से द्विरावृत्ति करने को मन्त्रशुद्धि कहते हैं। पहले मन्त्र-शुद्ध्यर्थ जप करना चाहिये। वाचिक, उपांशु और मानस भेद से जप तीन प्रकार का होता है। जिह्वा, ओष्ठ, अधरोष्ठ की स्फूर्ति-सहित जप को वाचिक; जिसमें केवल जीभ हिलती हो, उसे उपांशु और जिसमें केवल मन से ही मन्त्र के वर्णों का स्मरण किया जाता है, उसे मानस जप कहते हैं। वाचिक से उपांशु एक सौ आठ गुणा अधिक तथा उपांशु से सौ गुना अधिक फलदायक उत्तम मानस जप होता है। अथवा—जिस जप में वचन स्पष्ट सुनाई पड़ता हो, उसे निगद जप कहा जाता है और जिसमें वर्ण स्फुट न होते हों किन्तु मुँह डोलता अवश्य हो, उसे उपांशु तथा जिस जप में केवल मन्त्राक्षरों का मानस चिन्तन किया जाता है, उसे मानस कहा जाता है। एक लक्ष संख्या परिमित निगद जप उपांशु के केवल स्मरण के तुल्य और लक्ष संख्या परिमित उपांशु जप मानस के उच्चारण मात्र के तुल्य माना गया है।

इसके पश्चात् साधक प्राणायाम और षडंग करके ऋष्यादि न्यास करे। फिर हृदय में देवी का और मूर्धा में स्वगुरु का ध्यान करे। स्वयं को कामकला के रूप में भावित करके स्वेष्ट-

मन्त्र के जप का आरम्भ करे। जप के आदि में देवी का ध्यान करे। ध्यान के अन्त में जप करे। जप और ध्यान से युक्त साधक शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है। अब साधक माला की पूजा करे। यथा—पहले माला का जल से अभ्युक्षण करे। फिर गन्धाक्षत द्वारा—'ॐ ह्रीं अक्षमालायै नमः' मन्त्र से उसका पूजन करे। फिर दक्ष कर में माला को लेकर उसे हृदय के समीप लावे और वाम कर से स्पर्श न करते हुए—

ॐ माले माले महामाले सर्वसिद्धिस्वरूपिणि ॥
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मां सिद्धिदा भव।

इस मन्त्र से माला की प्रार्थना करे। मन्त्र की संख्या के निमित्त मिट्टी के टुकड़े अथवा अक्षत रख लेना चाहिये। साधक सावधान मन से मध्यमा अँगुली के मध्य पर्व में माला को रखे और अंगुष्ठ के अग्र भाग से शनैः शनैः एक-एक मणि को मन्त्र पूर्ण होने पर खिसकाता जाय। इस बात का विशेष ध्यान रखे कि जप के समय माला के साथ तर्जनी अंगुली का संयोग न होना चाहिये। मन्त्र के पार्श्व में सेतु संयुक्त करके जप-कर्म प्रारम्भ करना चाहिये। द्विजाति के लिये प्रणव ही मन्त्रों का सेतु है और शूद्रों के लिये चन्द्रबिन्दुयुक्त ओकार सेतु माना गया है। साधक प्रत्येक बीज को लेकर मन्त्रांग से ऊपर पूर्वबीज को जपता हुआ परबीज का स्पर्श करे। इस प्रकार उक्त विधि से विलम्ब और शीघ्रतारहित होकर मेरु की प्रदक्षिणा करके जप करना चाहिये। अथवा करमाला में या अन्तर्मातृका के वर्णों में नित्य जप करे परन्तु यदि काम्य जप करना हो तो माला आवश्यक है।

नित्य जप में और नित्य के होम में, जहाँ संख्या नहीं कही गई है, वहाँ एक हजार आठ या एक सौ आठ और कहीं-कहीं

केवल तीस ही जपसंख्या मानी गई है परन्तु तीस से कम नहीं करनी चाहिये। उपर्युक्त प्रकार से यथाशक्ति जप करने के पश्चात् प्रणाम करके माला को पुष्प और अर्घ्यजल से प्रोक्षण कर छिपाकर पवित्र स्थान में रख देना चाहिये। तेजोमय जप के फल को देवी के हाथ में सदैव समर्पित करना चाहिये। जप-समर्पण के समय 'गुह्यातीति' इत्यादि मन्त्र पढ़ना चाहिये। इसके अनन्तर साधक देवता की स्तुति कर घण्टा बजावे और तीन बार साष्टांग नमस्कार करे। नमस्कार की यह विधि है कि चिबुक (ठोड़ी) से, मुख से, नाक से, मस्तक से, ब्रह्म-रन्ध्र से और दोनों कानों से—जो-जो अङ्ग भूमि का स्पर्श कर सकें—उनसे अर्थात् हाथ और पैर आदि से। अथवा छाती, शिर, दृष्टि, जानु, मन, चरण, वचन और कर से नमस्कार करने को अष्टांग नमन कहा जाता है।

५—नित्य-होम

साधक नित्य और नैमित्तिक हवन वेदी में करे परन्तु काम्य हवन सदैव कुण्ड में करे। अपने हस्त-प्रमाण चतुष्कोण एक अंगुल ऊँची बालू की वेदी बनावे और उसके बीच में षट्कोण लिखकर जल से उसे प्रोक्षित करे और पूजन करे। फिर पूर्ववत् षडङ्गोंसहित आधारशक्ति का पूजन कर अग्नि को प्रज्वलित कर क्रव्याद अंश का त्याग करे। फिर शब्दास्त्र मन्त्र से नैर्ऋत्य दिशा में जलती हुई अग्नि को साधक अपने अभिमुख स्थापित करे और अग्नि को यथोचित प्रज्वलित कर ज्वालिनी मुद्रा दिखावे। दोनों मणिबन्धों को सम करके और सम्पूर्ण अंगुलियों को फैलाकर दोनों मध्यमाओं को संयुक्त करे और उनके बीच में अँगूठों को जोड़े तो ज्वालिनी मुद्रा बनती है। इसके पश्चात् साधक शिवशक्ति के समागम से

स्वेष्टदेवता का अग्नि में आवाहन करे और पूजन करे। पुनः आवाहनादिक मुद्राएँ दिखाकर 'फट्' मन्त्र से उनकी रक्षा करे। उक्त प्रकार से महादेवी की पूजा कर हव्य का शोधन करे।

हवनीय द्रव्य को स्थापित करके जल से उसे चार बार प्रोक्षित कर शुद्ध करे। फिर स्थाली को रखे। पूर्ववत् मण्डल बनाकर पूर्वोक्त विधि से उसका पूजन कर उस पर पात्र को रख उसमें हव्य को रखे और मूलमन्त्र से दश बार अभिमन्त्रित कर अग्नि में हवन करे। हवनीय मन्त्र इस प्रकार हैं—'ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये। ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे। ॐ स्वः स्वाहा इदं प्रजापतये।' इस प्रकार तीन आहुतियाँ दे। इनकी महाव्याहृति संज्ञा है। साधक हव्य, अग्नि, देवी और अपने में एकत्व की भावना से इस कार्य को सम्पन्न करे। इसके अनंतर मूलमन्त्र के षडङ्गों से छः आहुतियाँ प्रदान करे। फिर मूलमन्त्र के अन्त में देवता का नाम चतुर्थ्यंत उच्चारण कर अन्त में 'स्वाहा' संयुक्त कर एक सहस्र आठ आहुतियाँ घी, तिल अथवा मांस से दे। अथवा एक सौ आठ आहुतियाँ दे। या इसकी आधी आहुतियाँ दे। यही नित्य हवन की विधि है।

मांस, मधु, घी, मत्स्य, पुष्प, तिल या धान्य, मुद्रा, कुलपुष्प, फल, अपामार्ग, बिल्वपत्र, सुन्दर भृङ्गराजपत्र, कनेर पुष्प, जवापुष्प, अपराजिता पुष्प, द्रोण, किंशुक, पद्म, कुमुद, कुन्द, नील कमल, रक्तकमल, सुगन्धित पुष्प, बन्धूक पुष्प, जाती पुष्प, मल्लिका पुष्प, मालती, कदम्ब पुष्प, आदि मनोरम पुष्प एवं फलों से देवी का सविधि हवन समाप्त कर पञ्चप्राणों और मूलमन्त्र के षडङ्गों का आहुतियाँ दे। फिर गुरुवृन्दों का विधिवत् आवाहन कर प्रत्येक को एक-एक आहुति प्रदान करे। फिर प्रयत्नपूर्वक देवी को तीन आहुतियाँ दे। पुनः आचमन

देकर अग्नि में देवी को समाविष्ट जानकर संहार-मुद्रा से 'देवीं अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से तीन आहुतियाँ प्रदान करे।

६—विसर्जन

देवी एवं अग्नि का विसर्जन कर घण्टा और शङ्ख बजावे। पश्चात् चक्रस्थ परमेश्वरी का तर्पण करा साधक अपने सिर में देवता और गणदेवताओं को संहारमुद्रा से लाकर पूजन पूर्ण करे। तब साधक कौलिकों के साथ कुलामृत का पान करे क्योंकि जो वीर देवी को पञ्चतत्व प्रदान करके प्रसाद रूप में उन तत्त्वों को स्वयं ग्रहण नहीं करता, वह देवी के शाप का अधिकारी होता है। किसी भी साधक को अकेले पान कदापि न करना चाहिये; कौलिकों और देवी के साथ ही पान का विधान युक्त है। पान तीन प्रकार का शास्त्र में वर्णित है—दिव्य, वीर और पशु। देवी के समक्ष पान को दिव्य, एकान्तवासी वीरों के समक्ष पान को वीर और संस्काररहित पान को पशुपान कहा गया है।

---: ❀ :---

आठवाँ उल्लास

१—अन्नपूर्णा-पूजन

अब चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के देने-वाले क्रम को कहूँगा। अन्न की राशि के बीच में अष्टदल-कमल की रचना कर उसमें कारण से पूर्ण पात्र को स्थापित कर मायाबीज के षट् दीर्घों से षडङ्गन्यास करके फिर परमानन्द-दायिनी अन्नपूर्णा का ध्यान करे—

आदाय दक्षिण-करेण सुवर्ण-दर्वीं, दुग्धान्न-पूर्णमितरेण च रत्न-पात्रम्।
भिक्षान्न-दान-निरतां नव-हेम-वर्णामम्बां भजे सकल-भूषण-भूषिताङ्गीम्॥

इस प्रकार महादेवी का ध्यान कर उस पात्र में उनका आवाहन कर तत्त्वमुद्रा दिखाकर 'इदमन्नामृतं पूरय पूरय नमः स्वाहा' यह मन्त्र उच्चारणपूर्वक उसमें भक्तिपूर्वक अन्नपूर्णा का तर्पण और यजन करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' यह अन्नपूर्णा का मंत्र है। साधक समाहित मन से इसका यथाशक्ति जप करे। फिर देवेशी की स्तुति और पूजन कर कौलिकों का पूजन करे।

२—कौल-लक्षण

अब तन्त्रानुसार कौलों के लक्षण कहूँगा। दुःखों से निवृत्त, सन्तुष्ट, विद्या और आगम में निष्णात, विमत्सर, कुलज्ञानरत, शांत, शिव के भक्त, दृढ़व्रती, कुल की कीर्ति सुनने पर जिनको रोमाञ्च हो जाता हो और जिनका स्वर गद्गद हो जाता हो तथा जिनको आनंदाश्रु आ जाते हों, ऐसे वीर

कौलिकेश्वर होते हैं। लोक में सभी धर्म श्रेष्ठ हैं किन्तु कुलधर्म तो शिव ने ही कहा है, ऐसी जिनकी बुद्धि निश्चित है, वे उत्तम कौलिक कहे गये हैं। जो कुलतत्त्व का ज्ञानी हो, कुल-शास्त्र में विशारद हो, वही कुलार्चनरत पुरुषों में कौलिक श्रेष्ठ है। जो कौलिक कुलभक्तों को, कुलाचारों को, कुलव्रतों को देखकर प्रसन्न होता है, वह शिव को अति प्रिय है। पञ्चतत्त्वों को स्वीकार करने से, मूलमन्त्र के अर्थ के तत्त्व का ज्ञानी, देवता और गुरु का भक्त दीक्षा-ग्रहण से ही साधक बनता है। सारे संसार में कुलाचार्य का दर्शन दुर्लभ है।

३—कुलचक्रार्चन

साधक शक्ति-सहित कौलों को अपने यहाँ बुलाकर अपनी शक्ति और वीरशक्ति को, जो दीक्षित हों, द्रव्यपान कराकर स्वयं पान करे—यह शास्त्र का निर्णय है। जो साधक शक्ति को निवेदन किये बिना द्रव्य का सेवन करता है, उसकी पूजा निष्फल होती है। यंत्र के बिना पूजा और मांस के बिना तर्पण तथा बिना शक्ति के पान—ये सब निष्फल होते हैं। पूजनकाल में बुलाने से जो न आवे अथवा बिना बुलाये जो आवे, वे दोनों सर्वधर्मबहिष्कृत पापी होते हैं। पूजा-स्थान में प्रयत्न-पूर्वक आसन बिछाना चाहिये। इसके अनन्तर समस्त कौल एवं शक्तियाँ हाथ धोकर देवता को पञ्चमुद्राओं सहित प्रणाम कर यागगृह में प्रवेश करें। स्त्रियों से अलग अन्य स्थान में पुरुषों के आसन बिछाने चाहिये। अथवा प्रत्येक साधक अपनी-अपनी शक्ति-सहित क्रम से पंक्त्याकार या चक्राकार रूप से बैठे। भैरवी-चक्र के प्रवृत्त होने पर सभी वर्ण द्विजाति हो जाते हैं और उसके निवृत्त होने पर सब वर्ण पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। साधक चक्र में शिव-शक्ति की बुद्धि से सबका

पूजन करे। संस्कार-क्रम से जो ज्येष्ठ हो, उसी प्रकार प्रत्येक साधक एवं शक्ति के ललाट में गंधाक्षत से तिलक करना चाहिये। फिर मालाएँ पहिनावे।

साधक अति स्थूलता या सूक्ष्मता रहित मनोरम पात्रों में चार, तीन, दो, एक तोला प्रमाण में, यथाशक्ति हेतु का पान करे। कुलसाधन में ऐसा लिखा है कि इससे अधिक पात्र साधकों को न करना चाहिये। हाथों से पात्र को उठाकर यथाक्रम से श्री गुरुओं को और परशिव को देवता बुद्धि से मांस-सहित समर्पित करे। अमृतरसपूर्ण पात्र गुरु को देने के पश्चात् स्त्रियों को, फिर वीरों को, फिर कुलज कुलीन कुल-भक्त को देवे। गुरुओं को गुरुपात्र, शक्तियों को शक्तिपात्र वीरपात्र वीरों को देकर भोगपात्रामृत स्वयं पान करे। साक्षात् गुरु यदि न हों तो गुरुपात्र को जल में विसर्जित कर दे। फिर समस्त साधक सुधा-बुद्धि से उत्तम पात्रों को ग्रहण कर शास्त्र-प्रमाणानुसार सुधादेवी का ध्यान करें। यथा—

समुद्रे मथ्यमाने तु, क्षीराब्धौ सागरोत्तमे।
तत्रोत्पन्नां सुधां देवीं, कन्यका-रूप-धारिणीम्।।
गोमूत्र-सदृशाकारां, फेनामृत-समुद्भवाम्।
अष्टादश-भुजैर्युक्तां, नीरजायत-लोचनाम्।।
आनन्द-शिखरे जातः, आनन्दश्च महेश्वरः।
तस्मादिमां सुरा-देवीं, पूर्णोऽहं तां भजाम्यहम्।।

इस प्रकार ध्यान कर फिर मूलमन्त्र का सात बार जप करे। पात्र के ऊपर साधक पञ्च-मुद्रायें दिखावे। बाद में धेनु और योनिमुद्रा बार-बार उसे प्रदर्शित करे। छोटिका से और तीन ताल बजाकर दिग्बन्धन करे। फिर पूर्ववत् अपने शिर में

आनन्दभैरव एवं आनन्दभैरवी तथा गुरु-पंक्तियों का तर्पण करे। इसके पश्चात् इष्टदेव, रश्मिवृन्द, गणेश, क्षेत्रपाल, वटुकभैरव, योगिनी, डाकिनी, विघ्न करनेवाले महाभूतों का क्रम से तर्पण करे। भैरव की पूजा और गुरु-तर्पण किये बिना पशुपान-विधि से पान कर वीर साधक भी नरक को प्राप्त होता है। गुरुपंक्ति और रश्मिवृन्द का तर्पण किये बिना जो साधक पान करता है, वह पशुवत् होता है। कुलज्ञान के बिना जो कौल द्रव्य को भोगने की इच्छा करता है, वह महापातकी है और सर्वधर्म-बहिष्कृत है। यागकाल के अतिरिक्त इन द्रव्यों का सेवन दोषावह है।

मन्त्र-संस्कार से शुद्धात्मा वीर ही अलिपान कर सकता है। इससे देवताभाव उत्पन्न होता है और यह भव-बन्ध-विमोचक है। पात्र ब्रह्मा, सुरा विष्णु, रस खानेवाला रुद्र, आनन्दशेखर सदाशिव, मद्य भैरवदेव, मद शक्ति है। इसलिये सुरा शक्ति है, मांस शिव है और दोनों का भोक्ता स्वयं भैरव है और इन दोनों से उत्पन्न आनन्द मोक्ष है। आनन्द ब्रह्म का रूप है। वह देह में प्रतिष्ठित है। उसे अभिव्यक्त करनेवाला मद्य है। इसलिये योगीजन उसका पान करते हैं। ऐसा विचार कर बुद्धिमान साधक तत्वों का शोधन करे।

तनदन्तर वीर साधक विधि से पात्रों की वन्दना करे। प्रथम पात्रवन्दना कर तब भक्ति-परायण साधक यह पढ़े—

जानताऽजानता वापि, यन्मया क्रियते शिवे!।
तव कृत्यमिदं सर्वमिति मत्वा क्षमस्व मे।।

इस प्रकार महादेवी की स्तुति कर प्रत्येक साधक प्रत्येक की प्रार्थना करे। फिर प्रत्येक साधक परस्पर यथाश्रेष्ठ क्रमानुसार एक दूसरे से अनुज्ञा ग्रहण कर 'मैं स्वीकार करता हूँ'

ऐसा कह कर और आज्ञापक 'जुषस्व' ऐसा कहे। तब बद्ध-पद्मासनासीन वीर द्रव्य को ग्रहण करे। दक्ष कर से द्रव्यपात्र उठाकर वाम से मुद्रा बनाकर ग्रहण करे। एक हाथ से पात्र उठाना तथा एक कर से पात्र करना निषिद्ध है। पात्रवन्दन के पश्चात् कोटि सूर्य समप्रभ मूलाधारस्थ त्रिकोण में परम कलारूपिणी प्रकृति देवी का ध्यान करे। फिर कुण्डलिनी शक्ति चिदग्नि में मन्त्रोच्चारपूर्वक द्रव्य का हवन करे। द्रव्य ग्रहण करते समय द्रव्य-मुख-संयोग से किसी प्रकार का शब्द न होना चाहिये और न भूमि पर बिंदुपात हो। चर्वण-रहित पान केवल विषवर्धक है। इसलिये यथाक्रमविधि से चर्वण-सहित पान करना चाहिये। एवमेव एक आसन पर जो साधक बैठते और एक पात्र में भोजन करते हैं तथा एक पात्र में द्रव्य-पान करते हैं, वे निश्चय नरकगामी होते हैं।

चक्र में उच्छिष्ट रूप में कुलद्रव्यों को न छुये। बाहर हाथों का प्रक्षालन कर तब किसी अन्य वीर को कुलद्रव्य प्रदान करे। चक्र में मुद्रारहित तथा एक हाथ से जो साधक द्रव्य प्रदान करता है तथा थूकता, मल-मूत्र एवं अधोवायु त्याग करता है—वह योगिनियों का पशु होता है। चक्रार्चन-काल में परिहास, प्रलाप, वितंडावाद, बहुभाषण, उदासीनता, भय एवं क्रोध आदि न करना चाहिये। पाद तथा अधम अङ्ग से पात्र को नहीं छूना चाहिये और जिस स्थान में पात्र रखा हो, वहाँ से उसे हिलाना तथा अन्य पात्रों से सम्मिश्रण भी न करना चाहिये। पात्र के उठाते समय और पात्र पूर्ण करते समय शब्द होना निषिद्ध है। परस्पर वीरों के पात्रों का एक के पात्र को दूसरे से टकराना या भूमि पर रखना निषिद्ध है। आधार-सहित पात्र को उठाना तथा आधार-रहित पात्र का रखना मना है। पात्र को घुमाना एवं द्रव्य से रिक्त न करना

चाहिये। बुद्धिमान वीर पात्र का उल्लङ्घन न करे और न उछाले और न उसे भूमि पर गिरावे।

अब तृतीया-सहित दूसरा पात्र दे और उसका वन्दन करे। पूर्ववत् तर्पण कर फिर मुद्रा-सहित तीसरा पात्र हाथ में ले उसकी वन्दना पढ़े। पूर्ववत् तर्पण कर चतुर्थ पात्र की वन्दना करे। तब पूर्ववत् तर्पण कर पञ्चम पात्र की वन्दना करे। इसके पश्चात् मन्त्रवित् छठे पात्र की पूजा कर पान करे। पूर्ववत् तर्पण करके सप्तमपात्र की पूजा करे। सप्तमपात्र का पान कर चुकने पर साधक शान्ति स्तोत्र का पाठ करे।

फिर अष्टम पात्र लेकर उसकी वन्दना करे। पूर्ववत् तर्पण करके नवम पात्र की पूजा करे। सहस्रार में श्री गुरुदेव का, हृदय में देवी का ध्यान करते हुये और जीभ पर स्वेष्टमन्त्र का जप करते हुये 'मैं शिव हूँ' इस भावना से यथाविधि पूजन कर कुण्डलिनी के मुख में हवन करे।

फिर दशम एवं एकादश पात्रों की वन्दना कर पूर्ववत् तर्पण करे।

नाऽहं कर्ता कारयिता न च कार्यं नाहम्।
भोक्ता भोजयिता न च भोज्यम्॥
नाहं दुःखी दुःखयिता न च दुःखम्।
सोऽहं प्रत्यक्-चित्त-स्वरूपोऽयमात्मा॥

ऐसी भावना से वीर पान करे।

साधक अपने पात्र के हेतु को भैरव को भी न दे क्योंकि ऐसा करने से सिद्धि की हानि होती है एवं देवता का शाप प्राप्त होता है। कहीं यदि अनपेक्षावशात् प्राप्त हो जाय तो भक्ति-पूर्वक उसे अपने पात्र में लेकर गुरुदेव का स्मरण करते हुये पान कर जाय। गुरु की शक्ति के पुत्रों एवं गुरु से ज्येष्ठ और कनिष्ठ भ्राताओं तथा अन्य स्त्रियों का उच्छिष्ट साधक खाये

पर इन्हें अपना उच्छिष्ट कदापि न दे। चक्र में इसके विपरीत करने से साधक का पतन होगा। शक्ति का उच्छिष्ट द्रव्य पीना चाहिये और वीरों का उच्छिष्ट चर्वण करना चाहिये। चक्र में पान करने का यह नियम है कि जब तक साधकों की दृष्टि चलायमान न हो और जब तक मन चञ्चल न हो तब तक ही पान करना उचित है। उक्त विकार के आरम्भ होने के पश्चात् पान करना पशुपान कहलाता है।

शाक्तजन मद्यपान किसलिये करते हैं, इसका उत्तर शास्त्र में इस प्रकार कथन किया गया है कि साधकों के हृदय, मन एवं बुद्धि में मन्त्र के अर्थ की स्फूर्ति हो जाय तथा ब्रह्मज्ञान की स्थिरता हो परन्तु इन्द्रियलालुपता के लिये पान नहीं किया जाता।

चक्रार्चन काल में घट के टूटने, पात्र के गिरने, द्रव्य के गिरने, पात्र के टूटने, दीप के बुझने पर पुनः चक्र करने से शांति होती है। साधकों को यथा योग्य पिला कर और स्वयं पीकर उत्तम साधक पुनः परिवार-सहित देवी का तर्पण करे। फिर गन्धादि युक्त माला, चन्दन, धूप, दीप, दर्पण, चामर, नैवेद्य देकर मनोहर घण्टा, शङ्ख, आदि बजावे। फिर यथाशक्ति स्तव और प्रदक्षिणा कर पुष्पसहित अर्घ्य का अमृत लेकर आत्मसमर्पण करे। यथा—

ॐ इतः पूर्वं प्राण-बुद्धि-देह-धर्माधिकारतो
जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त्यवस्थासु कर्मणा, मनसा, वाचा, हस्ताभ्यां,
पद्भ्यां, उदरेण, शिश्ना, यत्-कृतं, यत्-स्मृतं, यदुक्तं, तत्-
सर्वं मां मदीयं च सकलं श्रीमदिष्टान्ते देवता-पादे समर्पणम्।

महादेवी के चरणों में पुष्पाञ्जलि प्रदान कर दण्डवत् कर 'क्षमस्व' कहकर पुनः पुनः देवी को आचमन प्रदान करे। फिर देवी के अङ्ग में सातों आवरण के देवताओं के लीन

होने की भावना करे। फिर साधक अर्घ्यपात्र को उठाकर शिर से लगावे और देवी के ऊपर तीन बार घुमाकर देवी के ऊपर निवेदन कर दे। फिर नासामार्ग से तेजोमयी देवी को संहार मुद्रा से हृदय में लाकर निर्माल्यवासिनी की पूजा करे।

निर्माल्यकुसुमों से देवी को प्रणाम कर भक्तिभाव से गुरुपादुकाओं को प्रणाम करे। फिर करषडङ्गन्यास कर स्थिर-मानस साधक 'सोऽहं' की भावना कर गुरु-स्थान ब्रह्मरन्ध्र में यन्त्रलेप को धारण करे। इस लेप को कभी भूल कर भी नास्तिक, पशु और मूर्खों को न दे। कौल को ही देना चाहिये। चण्डिका के नैवेद्य को देवता सदैव ग्रहण करने की इच्छा करते हैं। इसलिये देवी के निर्माल्य पुष्पों को ब्रह्मा को, मुझे (शिव को), विष्णु को, शुक्र, सूर्य, गणेश, यम, अग्नि, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान आदि देवों को और महादेवी के साधक को देना चाहिये। अथवा पवित्र स्थानस्थ वृक्षमूल के गड्ढे में या अन्य पवित्र स्थल में श्रेष्ठ साधक यत्न से गाड़ देवे। शक्तियों और साधकों को निर्माल्य चंदन देकर फिर उन्हें माला और चन्दन से विभूषित कर अपना शरीर भी अर्पण कर दे।

इसके अनन्तर श्रेष्ठ वीर साधक अर्घ्य के अमृत को सामयिकों में वितरण कर शेष को स्वयं ग्रहण करे। फिर यदि उचित प्रबन्ध हो तो पूर्णपात्र कर देह को मन्त्रमय कर गुरु की वन्दनापूर्वक कुलविद्या से श्रीपात्र को शुद्ध कर उस दुःख-निर्मूलक सुखकारण द्रव्य को चारों विद्यापीठों एवं शिव-शिवा को तर्पण कराकर सिद्धिक्रम से स्वाद लेकर पान करे। इस प्रकार पान करने के पश्चात् पूर्णपात्र लेकर विद्वान् साधक उसे भूमि में उलट कर उस स्थान में पुष्प डाल

कर फिर मायाबीज लिख वाम कर की कनिष्ठा अंगुली से 'यं यं स्पृशामि पादेन यं यं पश्यामि चक्षुषा। स एव दासतां यातु यदि शक्तसमो भवेत्।' इस मन्त्र को पढ़कर सामयिकों के तथा अपने तिलक लगावे। फिर वीरेन्द्र उस उत्तम पात्र को धोकर गुप्त स्थान में रख दे। फिर यथोचित क्रम से प्रसाद को परोस कर स्त्री एवं साधकों के सहित भोजन करे। भोजन कर चुकने के पश्चात् फिर से सबको गन्ध, चन्दन, मालाएँ अर्पण कर ताम्बूल, आभूषण, शय्या आदि दे।

यदि शक्ति दीक्षित न हो तो आत्मदेह स्वरूप से उसके कान में मायाबीज सुना देने से वह भुक्तिमुक्तिदायक शक्ति-रूपा हो जाती है। दीक्षाकाल में स्त्रियों का अभिषेक सुरा से या चन्दन से होता है। अभिषेक दीक्षाकाल में करना चाहिये। 'बालात्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्रां कुरु मम शक्तिं कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्र से शक्ति को शुद्ध करना चाहिये। कौलिक किन स्त्रियों की पूजा नहीं कर सकता—इस बात को तन्त्रमार्गानुसार कहते हैं। त्रिपुरा देवी ही साक्षात् गुरु है। अतः गुरुपत्नी उसी का रूप है। इसलिये मन, कर्म और वचन से साधक सदैव पूज्य भाव से उनकी प्रणाम आदि से पूजा करे। उनके चरणों की भक्ति से साधक शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त करता है। गुरुकन्या, गुरुभगिनी, अपनी पुत्री, मन्त्रपुत्री इनसे ब्रह्मवेत्ता मानस से भी रमण न करे। इसी प्रकार कौलिक भार्या साक्षात् सिद्धीश्वरी शिवा है। उसके रमण से कौलिक नरकगामी होता है। शिवहीना अर्थात् विधवा हो जाने पर भी स्त्री गौरवात् वर्जित है। अन्य स्त्री में विचार करने से देवी का शाप होता है। अथवा ऐसा भी मत है कि गुरु एवं वीर की स्त्री को छोड़कर समस्त स्त्री स्पर्श्य हैं परन्तु यह मत अद्वैतज्ञान

पारंगतों के लिये है, जिन्हें कुछ भी निषेध एवं विधि नहीं है किन्तु जिन्हें यह अवस्था प्राप्त नहीं है, उनके लिये पूर्व-वर्णित नियम ही पालन करना चाहिये।। शक्ति साधना में साधक को निर्विकार होना आवश्यक है। इसलिये यदि उसमें कुत्सित भावना है तो वह दोषी एवं प्रायश्चित्ती होगा। अन्यथा यदि यह भावना दृढ़ रहे कि इन्द्रियाँ अपने विषयों में प्रवृत्त हैं। मैं निर्विकार शिव हूँ, यह शक्ति है, मुझमें और इस शक्ति में एकीभाव है। मैं विषयासक्त नहीं हूँ। इस प्रकार निर्विकार मन होकर चिन्मयी की उपासना करनेवाला साधक निर्दोष तथा मुक्त होता है।

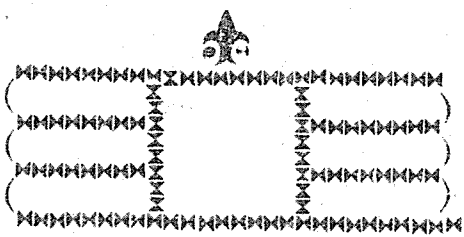

नवाँ उल्लास

१—पूजा-काल

पूजन के विषय में साधक को इस बात से अति सतर्क रहना चाहिये कि पूजन का जो काल निश्चित कर ले, वह भङ्ग न हो। जिस स्थान में पूजा की जाय, वहीं सदैव करनी चाहिये। पञ्चतत्वात्मक पूजा अति गुप्त रीति से रात्रि में करनी चाहिये, दिन में कदापि नहीं।

नित्य की पूजा उत्तम, पर्व की मध्यम तथा मासिकी पूजा अधम है। मास से अधिक दिन व्यतीत होने पर यदि साधक पूजा करता है तो वह पशु हो जाता है। कृष्णाष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा और संक्रांति इन पाँचों पर्वों में तथा पवित्र दिनों में सम्पत्ति लाभ होने पर और तप, दीक्षा, व्रतोत्सव में, देवी के किसी पीठस्थान पर जाने पर एवं वीर, कुल, पीठदर्शन हो। पर, किसी देशिक के आने पर, पुण्य तीर्थदेवत के दर्शन होने आदि के समय पर अवश्य कुल-पूजन करना चाहिये। एवमेव गुरु, परमगुरु, परमेष्ठिगुरुओं के जन्मदिनों में, मानवौघादि गुरु-जन्मदिनों में, अपने जन्म-दिवस आदि विशेष दिनों में एकादशी व्यतीपात होने पर भी पूजा करनी चाहिये। अष्टमी और चतुर्दशी को प्रयत्नतः पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार पूर्वापर प्राप्त होने पर साधक पञ्चतत्वों से प्रयत्नतः पूजन करे।

२—पूजास्थान

पर्वताग्रदेश में, विष्णु-मन्दिर में देवता नहीं रहता प्रत्युत चिदानन्दमय देवता हृदय में निवास करता है और वह भाव

से देखा जाता है। वाराणसी में महापूजा सम्पूर्ण फलदायिनी है। उससे दुगुनी पुरुषोत्तम के सन्निकट विशेष कर उससे भी दूनी द्वारिका में फलद कही गई है। अन्य समस्त पुण्य-क्षेत्रों एवं तीर्थों में की हुई पूजा द्वारिका के समान है। विंध्याचल में शतगुण अधिक, गङ्गा में उसके तुल्य एवं आर्यावर्त में, मध्यदेश में तथा ब्रह्मावर्त, पुष्कर, प्रयाग में विंध्यवत् ही फलदात्री है। विंध्य से चतुर्गुणा करतोया नदी के जल में, नन्दिकुण्ड में इससे भी चतुर्गुणा, इससे चतुर्गुणा, समुद्र के सन्निकट, इससे द्विगुण सिद्धीश्वरी योनि में, लौहित्यनद के मार्ग में इससे भी चतुर्गुणा और उसके समान कामरूप क्षेत्र में तथा जलथल में सर्वत्र मानी गई है। उससे शत-गुण आधिक्य नीलकूट के शिखर में है। उससे द्विगुण सुमेरु में स्थित शिवलिंग में, उससे द्विगुण शैलपुत्री की योनियों में; कामाख्या योनिमण्डल में उससे भी शतगुणा अधिक फल-प्रदात्री है। विधि इस प्रकार है कि सन्ध्या-समय मांस-प्रधान नैवेद्य लेकर साधक उपर्युक्त स्थानों में से किसी में जाकर बलि का सम्पादन करे।

३—शिवाबलि

निर्जन प्रदेश में अथवा श्मशान में जाकर सन्ध्या-समय मांस-प्रधान नैवेद्य से साधक शिवाबलि निवेदन करे।

गृह्ण देवि, महा-भागे! शिवे, कालाग्नि-रूपिणि !
शुभाशुभं फलं व्यक्तं, ब्रूहि गृह्ण बलिं तव ।।

इस मन्त्र से बलिप्रदान करे। अब—

काली कालीति वक्तस्त्रोगा शिव-रूपिणी ।
पशु-रूपा समायाति, परिवार-गणैः सह ।।

इससे आवाहन करे। शिवा के आने पर खाकर यदि वह ईशान की ओर मुँह उठाकर बोले और उसका स्वर

भला ज्ञात हो तो साधक का कल्याण होगा, अन्यथा न होगा। यदि आकर भी भोजन न करे तो शुभ न होगा। नित्य नैमित्तिक काम्य कर्म में प्रयत्नतः बलि प्रदान करना चाहिये। यह शुभावह बलिदान अति गुप्त रीति से करना चाहिये।

४—कुलपूजा

अब मैं कुलपूजा की विधि कहूँगा। कुलागम में इस प्रकार कहा है—कुलवार में, कुलाष्टमी में, विशेष कर चतुर्दशी में, कुलतिथि एवं कुल नक्षत्र में कुलपूजा करनी चाहिये। जिस पूजा में योगिनी की पूजा प्रधानतया की जाती है, उसको कुलपूजा कहते हैं।

द्वितीया, दशमी, षष्ठी ये तिथियाँ कुल और अकुल कही गई हैं। विषम तिथियाँ अकुल तथा समकुल कही जाती हैं। रवि, सोम, गुरु, शनि ये वार अकुल; भौम और शुक्र कुल तथा बुधवार कुलाकुल कहाता है। वारुण, आर्द्रा, अभिजित् और मूल ये नक्षत्र कुलाकुल हैं और समसंख्यक कुल शेष अकुल माने जाते हैं। अकुल तिथि नक्षत्र वार में पूजन करने से अपराजय तथा कुलक्षोभ में विजय एवं कुलाकुल में सौम्यता होती है। पूर्णिमा के अन्त में मासान्त से तिथियों का कार्य होता है। महाष्टमी एवं कुलाष्टमी सुन्दर सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। इस प्रकार सुसिद्धि के लिये कुलवारादि का निर्णय कहा गया।

अब इसके अनन्तर वीर पुरुष अपनी कल्पोक्त विधि से पाद्य, अर्घ्य पर्यन्त क्रियायें करके लाक्षारस-संयुक्त गृह में तूलिका की रचना करे। इस कृत्य के सम्पादनार्थ शास्त्रोक्त शक्ति का ग्रहण करे। यहाँ तंत्रमार्गानुसार अग्राह्य शक्ति का वर्णन करते हैं—अङ्गविकार युक्त, विधवा, व्यङ्गी, वृद्धा, तपस्विनी,

हीनांगी, हीनवसना, कुटिल, कलहप्रिय, लोभी और वेदविरुद्ध, निष्ठुरभाषिणी, झूठ बोलनेवाली, प्रलाप करनेवाली, मिथ्याचार करनेवाली, मदोत्सुक, ईर्ष्यादि दोषसंयुक्त, पागल स्त्रियों को नहीं ग्रहण करना चाहिये। जिसका मुख विकारयुक्त हो और जो अदीक्षित हो तथा जिसके मन में अनेक प्रकार के सङ्कल्प-विकल्प हों और वर्षीयसी, पापिनी, क्रूरा, अत्यन्त लोलुप, विचार-शून्य, दरिद्र का भी उत्तम साधक सदैव त्याग करे।

वीर साधक अक्रूरा, रूपवती, अलङ्कार-विभूषिता, दीक्षिता, घृणालज्जारहिता, शांतचित्ता, शिववाक्य में जिसकी दृढ़ भक्ति हो, गुरुदेव के चरणों में जिसकी प्रीति हो, ऐसी कुलोद्भवा चारु-हासिनी विदग्धा परम साधिका युवती को, चाहे वह परकीया अथवा स्वकीया हो, लाकर उसे पाद्य, अर्घ्य आदि देकर स्थिर मन से अतुल सिद्धि को सिद्ध करे। उसके शरीर में स्वकल्पोक्त विधि से न्यास-समूहों का सम्पादन करे। अब चन्दनादि द्वारा सुवासित जल से स्वकल्पोक्त विधि से उसमें देवी की पूजा करे—

सर्व-योषिन्मये देवि ! सर्व-कामार्थ-दायिनि !
कामेश्वरि काम-भूते ! कामुके ! सन्निधिं कुरु ।।

इस मन्त्र से देवी का आवाहन करे और पुनः अपना क्रम करे। पञ्चमी पूजन में स्वकुल मन्त्र वर्जित है। मद्यमांस के बिना जो साधक कुलपूजा करता है, उसके हजारों जन्म का सुकृत नष्ट होता है। इसलिये विधिवत् पूजन, जप, स्तुति एवं प्रणाम करके यथाविधि शक्ति का पूजन करे। मद्य, मांस एवं यावत् कुलसाधन सामग्री हो, सब कुछ शक्ति को अर्पण कर शेष गुरु को निवेदन कर पुनः शक्ति एवं गुरु की आज्ञा से स्वयं ग्रहण करे। अब शक्ति को दक्षिणा देकर 'सोहं' अर्थात् मैं शक्ति हूँ ऐसी साधक चिंता करे। यही कुलपूजन है।

—:०:—

दसवाँ उल्लास

अब मैं तन्त्रशास्त्रानुसार समयाचार का कथन करूँगा—

साधक प्रातःकाल ब्रह्मरन्ध्र में गुरु का ध्यान करे और मानस पूजन कर गुरुदेव की आज्ञा ग्रहण कर सर्वदा अपने समस्त कार्यों को करे। जो साधक गुरु को मनुष्य, मन्त्र को अक्षर एवं मूर्ति को पत्थर समझता है, उसे अवश्य नरक में जाना पड़ता है। गुरु के समक्ष शिष्य को चपलता एवं परिहास कदापि न करना चाहिये। गुरुदेव की जिससे प्रसन्नता हो, ऐसा कार्य जो उत्तम साधक करता है, उसके पैरों के नीचे शीघ्र सारी सिद्धियाँ लोटने लगती हैं। शरीर मन वचन से जो गुरुदेव के चरणों का भक्त है, उसे बिना जप होम किये ही आशु समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

गुरु के आगे किसी की दीक्षा एवं किसी विषय विशेष की व्याख्या तथा अपना प्रभुत्व प्रदर्शन और पृथक् देवपूजा, औद्धत्य ये बातें शिष्य को कदापि न करना चाहिये।

गुरु से ऋण लेना-देना तथा वस्तुओं का क्रय-विक्रय आदि व्यवहार न करना चाहिये। गुरु आज्ञा का उल्लङ्घन, गुरु के धन का अपहरण, गुरु के अप्रिय आचरण यह गुरुद्रोह कहाता है। इसे करनेवाला पातकी है। जपकाल के अतिरिक्त समय में गुरु का नाम शिष्य कदापि न लें। वरन् अभिवादन एवं साधना के समय में भी श्रीनाथ, देव, स्वामिन् इस प्रकार सम्बोधन करे। देवता, गुरु, गुरु-स्थान, क्षेत्र-क्षेत्र के अधिदेवता, सिद्धि, सिद्धों का स्थान

इन पूर्वोक्तों को भी श्री पूर्वक ही उच्चारण करना चाहिये। गुरु को तुकारना हुँकारना तिरस्कार करना अति निंदित है। ऐसे साधक की कहीं भी गति नहीं हो सकती।

गो ब्राह्मण की हत्या करने से जो पाप होता है, वह पाप गुरु के समक्ष झूठ बोलने से होता है। स्त्री की छाया, गुरुछाया, एवं देवता की छाया को लाँघना वर्जित है। गुरु को देखते ही शिष्य आसन छोड़ देवे और उठकर खड़ा हो जावे। गुरु के सत् अथवा असत् वाक्यों का शिष्य उल्लङ्घन न करे।

देवता और गुरु के सामने आसन पर धीर पुरुष न बैठे। राजा, देवता, गुरु के समीप खाली हाथ न जाना चाहिये वरन यथाशक्ति फल पुष्पादि ले जाकर उन्हें समर्पित करना चाहिये। गुरु और मन्त्र को सदैव गुप्त रखना चाहिये। गुरु की शय्या, आसन, सवारी, स्नान-जल, खड़ाऊँ, जूते आदि को लांघना न चाहिये।

विद्वान् पुरुष जुवाँ आदि क्रीडाओं में व्यर्थ समय न बितावें, वरन देवपूजा, जप, यज्ञ, स्तवपाठ आदि के द्वारा समययापन किया करें। गुरु की कृपा का आलाप, गुरु की कथा, स्तोत्र, शास्त्रावलोकन में रात-दिन बितावें। दूसरे की निंदा न किया करें। राग, लोभ, मद, क्रोध, चुगली आदि न करें। कुलाचार, गुरु और देवता की मन से भी निंदा न करें। पूजा, ध्यान, जप, होम ये चार काम सिद्धि की इच्छा करनेवाला साधक प्रतिदिन करे। कन्या की योनि, पशुओं की क्रीड़ा, नङ्गी युवती आदि को न देखना चाहिये। परद्रव्य और परस्त्री का ग्रहण न करे। वेदव्रती विप्र तथा वेदांग संहिताओं एवं पुराण, आगम, शास्त्र, कल्पों की निंदा और उनमें किसी प्रकार का दोषारोपण न करना चाहिये।

अन्य मन्त्र की पूजा में श्रद्धा न करे, अन्य मन्त्र की पूजा करनी अनुचित है। दूसरे का आवाहन करके उसकी पूजा करना अनुचित है। जब गुरुप्राप्त-मन्त्र से ही सब कुछ प्राप्त हो सकता है तब अपर साधनों के करने का प्रयोजन क्या ?

कुलदर्शनशास्त्रों, कुलद्रव्यों, कौलिकों, सेवकों, प्रेरकों, वाचकों, दर्शकों, शिक्षकों, योगिनी-सिद्धि-रूपकों, मोक्ष एवं नग्न कुमारिकाओं, उन्मत्त स्त्रियों की निंदा, उनका परिहास और अपमान कदापि न करे। किसी कुलयोगी का अप्रिय और उसके विषय में असत्य कभी भी न कहे। किसी कुल स्त्री को यह कुरूपा या निकृष्टा है ऐसा न कहे। भक्त वीरों के किये न किये की परीक्षा कदापि न करे। समस्त स्त्रियाँ जगज्जननी के कुल से ही उत्पन्न हुई हैं। सौ अपराध करने पर भी स्त्री को पुष्प से भी न मारे। इसलिये बुद्धिमान् पुरुष कुल स्त्री और वीरों की निंदा तथा तत्त्व द्रव्यापहरण, कुलरोध प्रहार का सदत्र त्याग करे।

जप स्थान में महाशङ्ख निवेशित करके जप करना चाहिये। शाक्त साधक कुलज स्त्री से युक्त मांस, मत्स्य, दधि, क्षौद्र आदि भक्ष्य द्रव्य यथा रुचि भोजन करता हुआ या करके जप करे। यदि साधक रात्रि में पर्यटन नहीं करता और शक्तिपूजन नहीं करता तो वह कैसे कौलिक हो सकता है! बहरा बनकर अकेले संग रहित सदा भ्रमण करे। शाक्त कौल योगी के लिये दिशा, काल, स्थिति आदि का कुछ भी नियम नहीं है और जप, बलि, अर्चा आदि के समय का भी। शक्तिमन्त्र के साधन में स्वेच्छा का ही नियम है।

इस मार्ग में स्नान आदि शौच, जप, दिव्य पूजन तर्पण आदि सब मानस ही श्रेष्ठ हैं। सभी काल शुभ हैं, अशुभ कहीं हैं ही नहीं। दिन, रात्रि, संध्या, महानिशा, वक्र,

आसन, स्थान, घर, देहस्पर्श आदि का कोई विचार नहीं, शरीरादि की शुद्धि से निरपेक्ष होकर केवल मन को निर्विकल्प बनावे। इस विषय में न तो शुद्धि की अपेक्षा है और न अमेध्य आदि का दोष हैं।

इस प्रकार जो मन्त्री चिंतन करता है, वह शीघ्र ही सिद्धियां का भाजन बनता है। ऐसा साधक अपना शरीर सर्वदेवमय समझे और अपने को देवता का रूप समझ अद्वैत की चिंता करे। आत्मा एवं परमात्मा स्वरूप से जगत् में व्याप्त हूँ तथा मैं ब्रह्मरूप हूँ, ऐसी भावना वह सदैव करे।

सर्वसिद्धि परायण सब काल में मन्त्र जपे। सर्वदा जप में सर्वांश में कोई दोष नहीं है। जपनिष्ठ जो कुछ जपता है, उसे सब यज्ञों का फल प्राप्त होता है। सब यज्ञों में जप यज्ञ श्रेष्ठ है। रात्रि में जप मात्र से चण्डिका सिद्धि देती है। रात्रि में यदि इडा नाड़ी चलती हो तो शक्तिमन्त्र का जप करे और पिंगला की गति में जीव की प्रवृत्ति होने पर पुरुष मन्त्र जपना चाहिये। इसी विधि से सिद्धि प्राप्त होती है। साधक को स्वर्ग एवं मोक्ष की अपेक्षा छोड़कर कृतार्थ रहना चाहिये। इस विषय में तनिक भी भ्रांति न करना चाहिये। इससे सिद्धि की हानि होती है। इस मार्ग में विशुद्ध चित्त होने से ही अपवर्ग देनेवाली सिद्धि प्राप्त होती है। शास्त्रों में महापातकियों की भी निष्कृति के उपाय बताये गये हैं। परन्तु कुलाचार-भ्रष्ट की निष्कृति किसी शास्त्र में नहीं देखी गई है। आचारवान् वीर योगिनियों का प्रिय होता है। इसलिये प्रत्येक साधक को

सच्चा कुलाचारी होना परमावश्यक है। कुलाचार पालन करने से योगिनियों और वीरों का मिलन होता है।

संस्कार-विहीन होने से, गुरुवाक्य के उल्लङ्घन से एवं आचारहीन होने से कौलिक पतित होता है। पञ्चतत्त्वों से सदैव महापूजा करनी चाहिये। पूजन सदैव अति गुप्तता से करना चाहिये, यह निश्चित है। ऐसा आचारपरक, जपपूजा-परायण, कुलतत्त्वों का पालक श्रीमान् साधक परतत्त्व में विलीन होता है और अणिमादि सिद्धियों का वह निधि होता है। कौल के लिये प्रायश्चित्त, भृगुपात, संन्यास धारण, कायक्लेश, नास्तिकता, तीर्थयात्रा, उपवास आदि वर्जित हैं। यदि वह अपनी सिद्धि चाहे तो पूर्वोक्त बातों को कदापि न करे। वीरहत्या, वृथापान, वीरद्रव्यापहरण, वीरस्त्रीगमन तथा वीर की स्त्री से पञ्चमतत्त्व की पूर्ति ये महापाप हैं। साधक इन्हें सर्वथा प्रयत्नपूर्वक त्यागे। सिद्धविद्या-पूजक साधक कुसुम्भ नालिका (शाक विशेष) और इमली को कभी न खावे। त्रिपुरा का पूजक ईख न खावे, कभी कदम्ब के वृक्ष को न काटे। गुप्त अथवा प्रकट, ज्ञान या अज्ञान से यदि निषिद्धाचरण हो जाय तो साधक प्रायश्चित्त करे। निषिद्धा-चरण होने पर पाप की गुरुता एवं लघुता, देश, काल, वय, वित्त आदि का सम्यक् विचार करके पाप शुद्धयर्थ गुरु के समक्ष साधक यथाविधि प्रायश्चित्त करे। शिष्य भी वही है, जो गुरुभक्त है और प्रायश्चित्त को करता है अथवा सब पापों का प्रायश्चित्त केवल गुरु का नामजप है।

गुरुदेव का एक लक्ष नाम जपने से साधक समस्त पापों से शुद्ध हो जाता है। अथवा अजपा का एक लक्ष या

लोपा का तीन लक्ष जप करने से साधक सदैव सर्व पापों से छूट जाता है। 'हंसः' यह अजपा मन्त्र तथा 'हसक्लीं ग्लौं हां हसक्लां क इ हीं ऐं क्लीं ग्लौं हां' यह लोपामुद्रा है।

इस विषय में अधिक कहने से क्या? रहस्य की बात तो यह है कि सभी वर्णाश्रमियों को आचार सद्गति प्रदान करता है। सुगुप्त कौलिक आचार को देवता ग्रहण करते हैं और ऐसा कुलीन वांच्छासिद्धि प्राप्त करता है और कुलधर्म-प्रकाशक कौलिका को देवता ही नष्ट कर देते हैं।

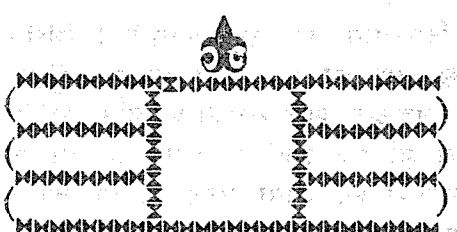

ग्यारहवाँ उल्लास

अब इसके बाद मैं भाव का कथन करूँगा। दिव्य, वीर और पशुभेद से भाव तीन प्रकार का है। तीनों भाव तथा मंत्र और देवता सभी श्रेष्ठ हैं परन्तु आद्य भाव (दिव्य) सर्व-सिद्धिप्रदायक है। द्वितीय (वीर) भाव मध्यम और तृतीय (पशु) भाव अतिनिंदित है। यदि साधक में भाव न हुआ तो न्यासविस्तार, भूतशुद्धिप्रस्तार, पूजनादि सब व्यर्थ हैं। विद्या की पूजा एवं मंत्र का जप कौन नहीं करता? सभी करते हैं किन्तु कोई फल प्राप्त नहीं होता इसका मुख्य कारण भावाभाव ही है।

१—दिव्यभाव

पहले दिव्यभाव का कथन करते हैं। जिस साधक का देवता जिस वर्ण का हो, तद्वर्णमय तत्तेजपुञ्जपूरित समस्त जगत् को वह देखे और तत्तेजमय मूर्ति की कल्पना करे। फिर तत्तत् मूर्तिमय मंत्रों से अपने को भी तन्मय समझे और संसारी समस्त भावों, वस्तु जातियों को संयमित मन से स्त्रीमय ध्यान करे। आठ वर्ष से लेकर सोलह वर्ष की अवस्था को युवती कहते हैं। उसी में भाव का प्रकाश होता है। अतएव वही भाव परम श्रेष्ठ है। इस कल्पित तेजो-मयी मूर्ति के चरणों से लेकर सिर पर्यंत दिव्य दृष्टि के द्वारा बारम्बार पुनः पुनः पान करे। उसके नखशशिज्योत्स्ना के प्रकाश को पाकर निष्पाप बने। वीर साधक सदैव स्निग्धांतः-करण तथा निर्विकार बने। सुवृत्त जानु एवं चारु जंघोरुजंघा की शोभा से, नाभि की रोमावलि, वक्ष स्थलों से, पीन-

पयोधरों से ग्रीवा से लेकर नयन पर्यंत केशाग्र प्रसरित मन्द स्मित युक्त मधुमत्तता पूर्ण दिव्यभाव विलोकन से युक्त देवता को चतुर्वर्ग पदाश्रयी साधक स्निग्धेन्द्रिय होकर सर्वतः व्याप्त देखे और इसी रूप को हृदय में स्थिर करे। इसके पश्चात् स्थिर मन से कामकला का ध्यान करे।

उपर्युक्त ध्यान से निवृत्ति काल में उस देवता के भाव-पूर्ण अमृत से अपने मुखादि को देवतामय कामकलास्वरूप-वत् ध्यान करे। यथा कामकला के स्वरूप (ईं) के बिंदु को मुख, उसके नीचे के भाग को कुचद्वय, उससे नीचे के भाग को नाभि से नीचे का शरीर समझे। यह कामकला-स्वरूप सर्वार्थसाधक है। उत्तम साधक इसे सर्वथा गुप्त रखे। साधक सदैव यही रूप अपना समझे।

इसके बाद आधारचक्र में कनकप्रभ, मेढ्र (लिंग) स्थान में शिवाकार, नाभि में तरुणादित्यबिम्बाभ, हृदय में वह्नि-शिखाकार, उसके ऊपर सूर्यद्युति की भाँति, कंठ में घण्टा वैडूर्य सन्निभ दीपशिखाकार, श्वासनालिका में चन्द्रबिंबाभ, भ्रूमध्य में रत्न की कांति के सदृश, नेत्रों में विश्व का तेज, उपर्युक्त स्थानों में ऐसा ध्यान करना चाहिये। कामकला के शरीर को धारण कर, स्पर्श कर या देखकर कुलों में और अकुलों में कामकला के रूप की चिंता करे। क्षण भर वैसा विमर्श करने से भाव का सञ्चय होता है।

साधक कामरूपिणी सुवेशी सुन्दरी को अपने वाम भाग में बैठाकर उसके शरीर में पूर्व वर्णित बिंद्वादि कामकला के रूप का ध्यान कर गंध, माला आदि से उसकी पूजा करके फिर कुलद्रव्यों को प्रदान करे। हेतुयुक्त ताम्बूल देकर तथा साधक स्वयं भी खाकर कौलिक एवं लौकिक कुलीन कथायें आदि सब पूछे। यह परम सुखावह दिव्यभाव कहा गया है।

२—वीरभाव

अब वीरभाव का वर्णन करते हैं। साधक निर्द्वन्द्वमानस होकर हृदय में कामकला शरीर को धारण कर निशा में सदैव हेतुयुक्त होकर पूजा करे। अपने कुल को लेकर स्वयं भैरव रूप धरकर और कुल भैरवी रूप होकर उसके शरीर में न्यासविस्तार एवं नवयोन्यात्मक न्यास करे। प्रसून-तूलिका के बीच में, जिसमें पुष्पों का समूह बिछा हो, नाना प्रकार की सुगन्धियों से जो सुगन्धित हो, कुलद्रव्य से यन्त्र बनावे और घटस्थापनापूर्वक शक्ति की पूजा करे। पूर्ववत् मण्डल बनाकर पूर्वोक्त घटों में से किसी एक की स्थापना करके उसे कारण से पूर्ण कर ब्राह्मणादि विभेद से पहले उसमें मन्त्र लिखकर जो कुल समुद्भव हो, उसमें इष्टदेवता का ध्यान कर एक सौ आठ बार जपे। उसे धेनुमुद्रा दिखाकर उसमें अमृत की चिंता करे। अर्घ्यपात्र को तीन भागों में बाँटे। एक गुरु को, दूसरा कुल को दे और तीसरे से देवता का तर्पण करे। साधक पूर्ण कुलरस का पान करके नाना अलङ्कारों से विभूषित होकर तथा आनन्दरूपवान् होकर परमेश्वरी की पूजा करे। तत्तत्कल्पोक्त विधि से तत्तन्मन्त्रों की पूजा करके फिर विसर्जन करके कुल में योजना करे। भक्ति स्वरस पान से देवी अमृत का पान करती है। तत्तत्कुलरसास्वादों से देवी प्रसन्न होती है। तत्तत्फल ग्रहण से ही सुमेरु के शृङ्गों का आरोहण होता है। लता के आलिंगन मात्र से साधक का कलेवर अमृत से धुल जाता है। मूलयोग करने पर उसमें आठ सहस्र जप करे। जप के अन्त में हविद्रव्य लेकर उससे देवता का तर्पण करे। तर्पण करने के पश्चात् प्रदक्षिणा करता हुआ साधक कल्पोक्त विधि से प्रणाम करके फिर

स्तोत्रों से देवी को सन्तुष्ट करे। यह वीरकुल अतीव सुन्दर तथा मनोहर है।

३—पशुभाव

अब पशुभाव का वर्णन करते हैं। भाव-तत्पर व्यक्ति यथा-विधि पशुविद्या को ग्रहण कर पहले प्रयत्नतः शुद्ध करे। मन से भी मत्स्यभोजन एवं स्त्री का स्मरण न करे। पर द्रव्य में लाभ तथा मन से भी उसका भोग न करे। किसी नदी के तट में, पर्वत में, वन में, देवालय में, बिल्वमूल में, विविक्त पुण्यक्षेत्र आदि में निवास करे। कुटिलता का सर्वथा त्याग करे। समाहित होकर शुभ्र वर्ण के देवता का ध्यान करे। तीनों सन्ध्याओं में ध्यान, पूजन तथा जप करे। रात्रि में माला और यन्त्र को कदापि न छुये। भोजनोपरांत मन्त्रोच्चारण न करे। सब कामों में मौन रहे। पर्वकाल में स्त्री-सम्भोग न करे। पुष्प, गन्ध एवं जल स्वयं लाकर पूजन करे। मैथुन एवं उसका प्रसङ्ग तथा गोष्ठी का त्याग करे। बिना ऋतुकाल के अपनी स्त्री का भी सहवास न करे। पुराणों के श्रवण में श्रद्धा रखे और वेद-वेदांग में तत्पर रहे। रात्रि में भोजन न करे, ताम्बूल भी न खावे। गुरु ने जो-जो आदेश दिये हों, उन्हें यत्नतः करना चाहिये। स्वजात-कुसुम एवं हेतु द्रव्य का स्पर्श हो जाने पर तीन रात्रि तक केवल पञ्चगव्य लेकर बिताने से पशुभाव का साधक शुद्ध होता है। देवीभक्ति परायण रक्तवस्त्र न ग्रहण करे। वरन् विष्णुतन्त्रोक्त कल्पादि एवं अनुष्ठानादि करे। वीरों की कथाओं की बातचीत एवं वीरों की वन्दना आदि कदापि न करे। नित्य श्राद्ध, गोग्रास, सन्ध्या-वन्दन, तीर्थस्नान, पीठस्थानों में गमन, धर्मतत्परता आदि करे।

पशु दीक्षित एवं अदीक्षित दो प्रकार के होते हैं। दीक्षित का पूजा में निश्चित् अधिकार होता है परन्तु गुरुत्व में उसका भी किसी तरह का अधिकार नहीं है। अदीक्षित को पूजा स्थान में जाने का भी अधिकार नहीं है।

पशुभाव से तीन जन्म तक भावना करने से सभाव होता है। तभी वह वीर बनता है और तब वह देवता बन जाता है। बड़े ही भाग्य से कोई वीर होता है क्योंकि वीरभाव होने पर उसे देवत्व प्राप्त होता है। देवता और वीर में कोई भेद नहीं रह जाता वरन् साम्यता है। भाव तो मन का धर्म है, वह शब्द कैसे हो सकता है। इसलिये भाव का प्रकाश न करना चाहिये।

बारहवाँ उल्लास

१—करमाला

अब माला का विधान कहा जायगा। अनामिका के मध्य पर्व से आरम्भ करके प्रादक्षिण क्रम से तर्जनी के मूल-पर्यन्त दश पर्वों में जप करना चाहिये। तर्जनी के अग्र और मध्य में जप करनेवाले के यश, आयु, विद्या और धन ये चारों विनष्ट होते हैं। सर्वतन्त्र-प्रदीपिनी 'शक्तिमाला' इसी को कहते हैं। जप करते समय अंगुलियों को एक में जोड़े रहे, तलभाग को संकुचित किये रहे क्योंकि अंगुलियों के वियोग से छिद्रों में जप का क्षरण हो जाता है। अंगुलियों के अग्र भाग में तथा मेरु के लंघन से जो जप होता है एवं पर्वों की सन्धियों में किया हुआ जप निष्फल होता है। हे महादेवि! नित्यजप में करमाला शुभप्रद है।

२—अक्षमालादि

अक्षमाला तथा अन्य मालाएँ सर्वथा सिद्धि प्रदान करती हैं। मुक्ताफलों की माला तथा स्फटिक मणिमाला राज्यमोक्ष-फलदायिनी और सदा सर्वसिद्धिप्रदा तथा सर्वराजवशङ्करी है। रुद्राक्ष की मालिका मोक्ष में सर्व सुसिद्धिदा है। वश्य-कर्म में प्रवाल की माला उपयुक्त है तथा लक्ष्मी और विद्या-प्रदायिनी है। पद्ममाला से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। रक्तचन्दन की माला वैश्यों को सौभाग्यदायिका है। पद्माक्षों की माला से जप करने से शत्रुओं का नाश होता है तथा यदि उसे कुशों के द्वारा गूंथा जाय तो वह पापों को

नष्ट करती है। पुत्रजीवक की माला से जप करे तो शीघ्र पुत्रोत्पन्न होता है। हिरण्मयी माला कामनाप्रद एवं प्रवालमयी पुष्कल धनदात्री है। शाक्तों के लिये स्फटिक एवं रक्तचन्दन की माला श्रेष्ठ है। इन्द्राक्ष की माला महती सिद्धि को बढ़ाती है। गुंजाओं की माला से सर्वसिद्धि तथा बिल्वकाष्ठ की माला सिद्धिदात्री है। शङ्ख की बनी माला सर्वसौभाग्य-दायिका है।

रक्तचन्दन की माला वाला विद्या के जप के लिये बनानी चाहिये। दाँत से मांणयाँ और राजदन्त का सुमेरु कालिका के लिये बनावे। उग्रतारा के जप के लिये महा-शङ्ख की माला, तथा उन्मुखी की माला मोक्षदा होती है। वैष्णवों के लिये पद्मबीजों तथा तुलसी की माला चाहिये। गणेश मन्त्र के लिये गजदन्त और शिव के लिये रुद्राक्ष की माला बनावे। अभिचार कर्म में गर्दभ एवं वराह के दाँतों की माला चाहिये। एक सौ आठ या चौवन मणियों की माला बनावे। अथवा मातृका संख्या की माला सर्वश्रेष्ठ है। इसे ही प्रयत्नतः बनाना चाहिये। सर्वसाधारण जप के लिये सत्ताइस मणियों की माला बना लेवे। मोक्षार्थी साधक पच्चीस, धनार्थी तीस मणियों की माला में मन्त्र जपे। एवमेव पुष्ट्यर्थी सत्ताइस तथा अभिचारक पन्द्रह मणियों की माला ग्रहण करे। एक सौ आठ मणियों की माला सर्व-श्रेष्ठ है, ऐसा विद्वानों ने कहा है। पचास की माला से सब कार्य करना चाहिये, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है।

३—माला-संस्कार

सुन्दर गोल बेर के बीजों को लाकर शिल्पी को दक्षिणा देकर साधक माला बनवा कर यथा शास्त्र प्रमाण उसका

संस्कार करे। अप्रतिष्ठित माला में जो साधक मन्त्र जपता है, उसका सब जप विफल जाता है। पवित्र स्त्री के द्वारा बने सूत्र, अथवा कपास या रेशमी सूत्र, कमलोद्भव सूत्र, कोसे का सूत्र, सन का सूत्र—इनमें से किसी एक के सूत्र से माला को गूँथना चाहिये। सुवर्ण आदि के त्रिगुणमय सफेद, रक्त और कृष्ण तीन तारों से त्रिगुणित सूत्र में माला गूँथने से शांति, वश्य और अभिचार होते हैं। रक्त तार में गूँथने और उसमें जप करने से मुक्ति तथा श्वेत से योग-साधन और पीत से कामना-पूर्ति एवं यश की प्राप्ति होती है तथा कृष्ण से रोग उत्पन्न होता है। नित्य और नैमित्त कार्य में शुक्ल श्रेष्ठ है तथा रक्त भी शुभ है। माला ग्रथित करने की विधि यह है कि बीजों तथा सूत्र को पञ्चगव्य में डाल दे। फिर उन्हें मूलमन्त्र पढ़कर शुद्धोदक से धोकर तब गूँथे। गुरु, ससुर, दामाद, पुत्र इनकी गूँथी माला अथवा स्वयं की बनाई माला साधक ग्रहण करे। अन्य की कदापि नहीं, परन्तु अपनी कान्ता की गूँथी माला द्रुतसिद्धिकरी होती है, ऐसा गुरुजनों एवं शास्त्र का मत है। एक-एक मणि को लेकर एक-एक ग्रंथि लगाता जाय। ग्रंथिहीन माला कदापि न बनावे क्योंकि स्पृष्टास्पृष्ट होने से वह दूषित हो जाती है। स्वेष्टदेवता के मन्त्र जपनेवाली माला में अन्य किसी देवता के मन्त्रों का जप कभी न करना चाहिये।

तोतलावनवासिनी, कालिका और त्वरिता, वाराही आदि अन्य चण्डिका देवी की माला में, वज्रा आदि के छः भेदों में ग्रंथिहीन माला ही का विधान है। एक-एक मणि लेकर स्थिर मन से हृदय में तार (ॐ) मन्त्र का स्मरण करता हुआ तथा मूलमन्त्र का जप करता हुआ एक-

नष्ट करती है। पुत्रजीवक की माला से जप करे तो शीघ्र पुत्रोत्पन्न होता है। हिरण्मयी माला कामनाप्रद एवं प्रवालमयी पुष्कल धनदात्री है। शाक्तों के लिये स्फटिक एवं रक्तचन्दन की माला श्रेष्ठ है। इन्द्राक्ष की माला महती सिद्धि को बढ़ाती है। गुंजाओं की माला से सर्वसिद्धि तथा बिल्वकाष्ठ की माला सिद्धिदात्री है। शङ्ख की बनी माला सर्वसौभाग्य-दायिका है।

रक्तचन्दन की माला वाला विद्या के जप के लिये बनानी चाहिये। दाँत से मणियाँ और राजदन्त का सुमेरु कालिका के लिये बनावे। उग्रतारा के जप के लिये महा-शङ्ख की माला, तथा उन्मुखी की माला मोक्षदा होती है। वैष्णवों के लिये पद्मबीजों तथा तुलसी की माला चाहिये। गणेश मन्त्र के लिये गजदन्त और शिव के लिये रुद्राक्ष की माला बनावे। अभिचार कर्म में गर्दभ एवं वराह के दाँतों की माला चाहिये। एक सौ आठ या चौवन मणियों की माला बनावे। अथवा मातृका संख्या की माला सर्वश्रेष्ठ है। इसे ही प्रयत्नतः बनाना चाहिये। सर्वसाधारण जप के लिये सत्ताइस मणियों की माला बना लेवे। मोक्षार्थी साधक पच्चीस, धनार्थी तीस मणियों की माला में मन्त्र जपे। एवमेव पुष्ट्यर्थी सत्ताइस तथा अभिचारक पन्द्रह मणियों की माला ग्रहण करे। एक सौ आठ मणियों की माला सर्व-श्रेष्ठ है, ऐसा विद्वानों ने कहा है। पचास की माला से सब कार्य करना चाहिये, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है।

३—माला-संस्कार

सुन्दर गोल बेर के बीजों को लाकर शिल्पी को दक्षिणा देकर साधक माला बनवा कर यथा शास्त्र प्रमाण उसका

संस्कार करे। अप्रतिष्ठित माला में जो साधक मन्त्र जपता है, उसका सब जप विफल जाता है। पवित्र स्त्री के द्वारा बने सूत्र, अथवा कपास या रेशमी सूत्र, कमलोद्भव सूत्र, कोसे का सूत्र, सन का सूत्र—इनमें से किसी एक के सूत्र से माला को गूँथना चाहिये। सुवर्ण आदि के त्रिगुणमय सफेद, रक्त और कृष्ण तीन तारों से त्रिगुणित सूत्र में माला गूँथने से शांति, वश्य और अभिचार होते हैं। रक्त तार में गूँथने और उसमें जप करने से मुक्ति तथा श्वेत से योग-साधन और पीत से कामना-पूर्ति एवं यश की प्राप्ति होती है तथा कृष्ण से रोग उत्पन्न होता है। नित्य और नैमित्त कार्य में शुक्ल श्रेष्ठ है तथा रक्त भी शुभ है। माला ग्रथित करने की विधि यह है कि बीजों तथा सूत्र को पञ्चगव्य में डाल दे। फिर उन्हें मूलमन्त्र पढ़कर शुद्धोदक से धोकर तब गूँथे। गुरु, ससुर, दामाद, पुत्र इनकी गूँथी माला अथवा स्वयं की बनाई माला साधक ग्रहण करे। अन्य की कदापि नहीं, परन्तु अपनी कान्ता की गूँथी माला द्रुतसिद्धिकरी होती है, ऐसा गुरुजनों एवं शास्त्र का मत है। एक-एक मणि को लेकर एक-एक ग्रंथि लगाता जाय। ग्रंथिहीन माला कदापि न बनावे क्योंकि स्पृष्टास्पृष्ट होने से वह दूषित हो जाती है। स्वेष्टदेवता के मन्त्र जपनेवाली माला में अन्य किसी देवता के मन्त्रों का जप कभी न करना चाहिये।

तोतलावनवासिनी, कालिका और त्वरिता, वाराही आदि अन्य चण्डिका देवी की माला में, वज्रा आदि के छः भेदों में ग्रंथिहीन माला ही का विधान है। एक-एक मणि लेकर स्थिर मन से हृदय में तार (ॐ) मन्त्र का स्मरण करता हुआ तथा मूलमन्त्र का जप करता हुआ एक-

एक ग्रंथि लगावे और अन्य व्यक्ति प्रणव का जप करता हुआ ग्रंथि लगावे। माला गोपुच्छ-सदृशी या सर्प-रूपिणी हो। माला के अन्त में एक सुमेरु बनावे। सुमेरु के दक्षिण में न्यास मन्त्रों का तथा वाम ओर इष्टदेवता का भी ध्यान करता हुआ सुमेरु में गुरु की पूजा करे। इससे सिद्धि प्राप्त होती है। साधक जप करते समय या माला के सम्बन्ध में सदैव सुमेरु को गुरु तथा उसके दक्षिण भाग में मूलमन्त्र के बीजों को समझे। इस प्रकार माला निष्पन्न कर उसकी प्रतिष्ठा करे। माला को पञ्चगव्य में डालकर शिवमन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करे। फिर अनुलोम विलोम क्रम से मातृका वर्णों से अन्तरित न्यास करे। नादबिंदु-विभूषित शक्रस्वरारूढ़ सान्त शिव का मन्त्र साधकों के कल्याणार्थ कहा गया है। मूलमन्त्र का उच्चारण करता हुआ साधक माला को पञ्चगव्य और पञ्चामृत से स्नान करावे। घी, दूध, जल, शक्कर और मधु को पञ्चामृत कहते हैं। ये सब पदार्थ प्रत्येक चार-चार तोला लेने चाहियें। आधा पल गोबर, एक प्रस्थ दूध, एक प्रस्थ दही, एक प्रस्थ गोमूत्र, आधे प्रस्थ घी के सम्मिश्रण को पञ्चगव्य कहते हैं। इन वस्तुओं को मिलाते समय साधक मूलमन्त्र का उच्चारण करता रहे। इस कार्य के बाद गुनगुने जल से सद्योजात आदि मन्त्रोच्चारण पूर्वक उसे पोछ ले।

मन्त्र—ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि, सद्योजाताय वै नमः।
भवेऽभवेऽनादि-भवे, भजस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

फिर चन्दन अगर आदि गन्ध द्रव्य लगा कर माला का दोनों हाथों से घर्षण करे। गन्ध का मन्त्र यह है—

ॐ वाम-देवाय नमो, ज्येष्ठाय नमः, श्रेष्ठाय नमो, रुद्राय नमः।
कालाय नमः, कल-विकरणाय नमः॥

बलाय नमो, बल-विकरणाय नमो, बल-प्रभथनाय नमः ।
सर्व-भूत-दमनाय नमो नमः, उन्मनाय नमः ।।

तब धूप देवे, धूप का मन्त्र यह है—

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो, घोर-घोर-तरेभ्यः।
सर्वतः सर्व-सर्वेभ्यो, नमस्तेऽस्तु रुद्र-रूपेभ्यः।।

पुनः गन्ध, चन्दन, केशर से उसका लेप करे। लेप का मन्त्र यह है—

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महा-देवाय,
धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

तब साधक सुमेरु तथा प्रत्येक मणि को निम्नलिखित मन्त्र से अभिमन्त्रित करे—एक सौ बार मेरु को तथा सौ-सौ बार प्रत्येक मणि को।

मन्त्र– ॐ ईशानः सर्व-विद्यानामीश्वरः सर्व-भूतानाम् ।
ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधि-पतिः शिवो मेऽस्तु सदा-शिवोम्।।

इन संस्कारों के कर चुकने के पश्चात् स्वर्णादि पेटी में उसे रखे। अथवा किसी पात्र में अश्वत्थ (पीपल) के नव पत्रों को धोकर एक बीच में तथा आठ चारों ओर इस प्रकार रखे कि अष्टदलकमलाकार बन जाय। फिर उसमें माला को रखे अथवा किसी पीठ पर रखे। तब उसमें स्वकीय देवता की पूजा करे। सांग, सावरण देवता की विस्तृत उपचारों से पूजा कर उत्तम साधक एकैक क्रमयोग से बीजों की एक सौ आठ बार प्राणप्रतिष्ठा करे। प्राणशक्ति समारूढ़ ॐकार बिंदुरूप धारी प्रणव, तब अक्षमालाधिपतये, फिर हृदन्त बीज और अन्त में मूलमन्त्र का उच्चारण कर क्रम से माला की पूजा करे। तब घृतयुक्त तिलों से शक्तिसहित होम करे। यदि होम न कर सके तो द्विगुण मूलमन्त्र का जप करे। फिर—

ॐ अक्ष-मालाऽधिपतये, सुसिद्धादि-सर्व-मन्त्रार्थ-साधिनि!
साधय साधय सिद्धिं प्रकल्पय स्वाहा ।।

इस मन्त्र से मालिका को अभिमन्त्रित कर पुनः एक सौ आठ बार मूलमन्त्र का जप करे। एक सहस्र आठ बार जपे तो अधिक श्रेष्ठ है। उपर्युक्त माला-संस्कार-विधि गुरु के करने की कही गई है। गुरु स्वयं शिष्य की माला का संस्कार कर शिष्य को दे। तब शिष्य स्वयं एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार जप कर माला को गुप्त स्थान में छिपा कर रख दे। शिष्य इस कार्य के समाप्त हो जाने के बाद गुरु को दक्षिणा दे और उन्हें सन्तुष्ट करे। यदि गुरुदेव न हों तो शिष्य स्वयं पूर्वोक्त विधि से माला का संस्कार करे।

जप के अन्य समय में माला की पूजा करके उसे छिपा देना चाहिये। माला को अपवित्र दशा में न छुये और अशुचि स्थान में न रखे। जपकाल में यदि माला हाथ से गिर जाय तो तीन दिनों तक जप उससे न करे। उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये।

प्रायश्चित्त यह है कि एक हजार बार मूलमन्त्र का जप करे। अथवा एक सौ आठ ही बार जपे। यदि सूत्र जीर्ण हो जाय तो पुनः ग्रथित करके एक सौ आठ बार जप करे।

४—वर्णमाला

अब ऐसी सर्वोत्तमोत्तम माला का कथन करूँगा, जिसके ज्ञान मात्र से तत्क्षण मन्त्र सिद्ध होते हैं। मातृका वर्णों के अनुलोम और विलोम क्रमभेद से मूलमन्त्र से मातृका वर्ण तथा मातृका वर्ण से मूलमन्त्र वर्ण सम्पुटित कर सर्वमन्त्रों की प्रदीपिनी वर्णमयी माला बनावे। मातृका के अन्तिम वर्ण

को सुमेरु समझे, जपकाल में उसका लङ्घन कदापि न करे, इसमें यही रहस्य है। बिंदु-संयुक्त अनुलोम-विलोमस्थ अष्टवर्गों-सहित मातृका वर्णों तथा 'ह्रीं' मेरु की वर्णमयी माला से जप किये हुये मन्त्र तुरन्त सिद्ध होते हैं। इसका क्रम यह है कि पहले बिंदुसहित मातृका वर्ण का उच्चारण करे, तब मन्त्रोच्चारण करे।

५—यन्त्र-प्रतिष्ठा

अब मैं यन्त्र की प्रतिष्ठा कहूँगा। सुवर्ण, चाँदी और ताम्र का उत्तम, मध्यम एवं अधम यन्त्र क्रमशः जानना चाहिये। ताँबे के यन्त्र में लक्ष गुण, चाँदी के यन्त्र में कोटि गुण तथा सुवर्ण के यन्त्र में अनन्त फल होता है। स्फाटिक भी बराबर ही फलप्रद है। एक दो तीन चार पाँच छः सात अथवा आठ तोले का, जैसा शक्ति हो, सुन्दर मनोहर एवं जिसमें सुन्दर रेखायें हो तथा अतीव सुमुख यन्त्र विधिवत् बनावे। अथवा निजदेवस्वरूपिणी प्रतिमा बनवाकर यथाशास्त्र प्रमाण से उसकी प्रतिष्ठा करे। यन्त्र की प्रतिष्ठा-विधि यह है—मन्त्री स्नान करके सङ्कल्पपूर्वक न्यासादि करे। तब शिव-मन्त्र शोधित पञ्चगव्य में प्रणवोच्चारण करके यन्त्र को स्थापित करे। तब उसे बाहर निकाल कर स्वर्णमय पीठ पर रखे और पञ्चामृत तथा शीतल जल से स्नान करा कपड़े से पोंछकर स्वर्णपीठ पर रख कुशों से यन्त्र का स्पर्श करता हुआ वह पीठ-पूजाकर—ॐ यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्—यन्त्र के इस गायत्री मंत्र का एक सौ आठ बार जप करे। तब यन्त्र में प्राणप्रतिष्ठापूर्वक देवी का आवाहन कर स्व-कल्पोक्त विधिपूर्वक नाना विध रसपानों, नाना विध फलों, द्रव्यों एवं रागादिक के षोडशोपचारों द्वारा परमेश्वरी की

पूजा करे। तब मूलमन्त्र का एक हजार जप करे। तब बलि-दान कर चक्र को नमस्कार करे। तब वह घी की एक सौ आठ आहुतियाँ देकर गुरु और शिल्पी को दक्षिणा दे। इस प्रकार यन्त्र में देवता की प्रतिष्ठा करके स्वकल्पोक्त न्यासादि तथा गायत्री का जप करे।

६—पुरश्चरण-विधि

गुरुप्राप्त मंत्रों के पुरश्चरणों के ज्ञानमात्र से भाग्यहीन मूर्ख भी अमर हो जाता है। इतना ही नहीं, वरन समस्त सिद्धियों को प्राप्त करके वह सिद्धीश्वर हो जाता है इसलिये पहले नियम पूर्वक यथाविधि साधक पुरश्चरण करे। तब मन्त्री अपने मंत्र का प्रयोग करने योग्य होता है। पुरश्चरण के लिये वह ग्राम में एक कोस पर, शहर से एक या दो कोस पर किसी नदी के किनारे, स्वेच्छापूर्वक आहार-विहार जहाँ सुगमता से हो सके, ऐसा स्थान निश्चित करे। घर में जप सम, नदी तट में शतगुणा, पुण्यारण्य तथा बगीचे में हजार गुना अधिक फलप्रद कहा गया है। पर्वत पर अयुतगुणा तथा गङ्गातट पर लक्षगुणा, देवालय में कोटिगुणा और शिव के समीप अनन्त पुण्य का कथन विद्वानों ने किया है। पश्चिमाभिमुख लिंग में या स्वयंभू बाणलिंग में अथवा उसके समीप अन्य किसी लिंग में, प्रयाग में या अन्यत्र कहीं भी गङ्गातट में अथवा काशी में, वराहक में, उज्जट में, श्मशान में, गहन वन में, एकलिंग-स्थल में, शून्य घर में, चतुष्पथ में, एक ही वृक्ष वाले पर्वत में, वटमूल में, शिवालय में से किसी एक स्थान में साधक महानिशा में पुरश्चरण करे।

वीर साधक दूधवाले वृक्ष के दश खूँटे बनाकर उन्हें 'फट्' मंत्र से अभिमंत्रित कर पूर्वादि क्रम से दशों दिशाओं में

गाड़े। तब इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त आदि दिक्पालों की पूजाकर उन्हें बलि प्रदान करे। ईशान और इन्द्र के मध्य में ऊर्ध्व तथावरुण और असुर के बीच में अधः जानना चाहिये। क्षेत्र कीलित कर लेने से मंत्री को किसी प्रकार का विघ्न नहीं होता। दीपस्थान में यथाविधि चतुर्द्वारात्मक मण्डल बनाकर क्षेत्रपाल और गणेश की पूजा करे। पुरश्चरण प्रारम्भ करने के एक दिन पूर्व प्रातःस्नान कर पवित्र होकर प्रयत रूप से ज्ञाताज्ञात पाप-क्षयार्थ एक हजार ब्रह्मगायत्री का जप करे। तब भोजनादि द्वारा ब्राह्मणों को तृप्त करे। तब अपने गुरुदेव महाराज को नाना वस्त्रों और आभूषणों से पूजा करे और उनकी आज्ञा ग्रहण कर जप आरम्भ करे।

जप प्रारम्भ करने के पूर्व साधक नित्य परकीया दीक्षिता स्त्री का वस्त्र-पुष्पादि से पूजन करे। वह स्वयं अपने मन को स्थिर रखे। पुरश्चरणकाल में वह खीर, पिष्टक, दूध, दही तथा शर्करा मिश्रित तक्र, नवनीत, गुड़, लड्डू तथा अनेक भाँति के फल, नाना प्रकार के विलेपन, लाल चंदन, कस्तूरी, श्वेत चंदन, केशर, आसन, पादुका, वस्त्र तथा आभरणादि धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्पमाला और परम पञ्चतत्व तथा कुलाष्टक—ये वस्तुयें शून्य गृह में लाकर एकत्र करे। तब द्वारदेश में द्वार-देवताओं का पूजन करे। चारों द्वारों पर गणेश, वटुक, क्षेत्रपाल तथा योगिनियों की पूर्वादि क्रम से पूजा कर उन्हें बलि देवे। तब भूतों को दूर कर दीपस्थान बनावे। तब नानालङ्कारों से भूषित होकर आसन पर बैठकर स्वकल्पोक्त विधि को कर अर्घ्योदक से अपना तथा पूजा की वस्तुओं का सिञ्चन करे। अर्घ्योदक से सिंचित तथा नानालङ्कारों से भूषित आठ शक्तियों का अमृतीकरण कर उनकी पूजा करे और आठों

कन्याओं के रूप-भेद को तथा उनके विचारों और चेष्टाओं को देखकर समझे। ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा, वेश्या, नापित कन्या, धोबिन, योगिनी—ये आठों कुलभूषण मानी गई हैं। परंतु सब जाति की विदग्धा अर्थात् चतुर युवती स्त्रियाँ सिद्धियों की देनेवाली और प्रशस्त हैं। ब्राह्मणी आदि आठों शक्तियों को उनका नाम उच्चारण कर प्रथम उन्हें आसन प्रदान करे। तब बारम्बार स्वागत कर अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, आचमन, स्नान आदि कराकर गन्ध, पुष्प आदि देकर उनके केशों में कङ्घी करे। केशों को धूपित कर सुगंधित तेल लगा कर कंघी आदि करे। तब कौशेय वस्त्र प्रदान करे। तब अन्य स्थान में ले जाकर पादुका प्रदान कर सुन्दर आसन पर बिठाकर नानालङ्कारों से भूषित कर गन्धादि-लेपन तथा माला पहना कर यथाक्रम विधान से उन-उन शक्तियों का ब्राह्मणी आदि अष्ट माताओं के रूप में ध्यान करे। यथा—

हंसारूढां सुवर्णाभां, चतुर्वक्त्रां त्रिलोचनाम्।
ब्रह्म-वृत्तार्ब्ज-दण्डाक्ष-सूत्राणि कर-पङ्कजैः।।
दधतीं चारु-रूपां च, जटा-मुकुट-मण्डिताम्।
स्त्र्यलङ्कार-समायुक्तां, ब्रह्माणीं संस्मरेत् सुधीः ।।
माहेश्वरीं वृषारूढां, शुक्लां नेत्र-त्रयान्विताम् ।
कपालं डमरुं बाणं, शूलं टङ्कमभीतिदम् ।।
कराब्जैर्दधतीं चन्द्र-चूडा-रत्न-विभूषिताम् ।
त्रिनेत्रां कुङ्कुम-निभां, कौमारीं शिखि-वाहनाम् ।।
शक्ति-पाशांकुशाभीति-करां चारु-विभूषिताम् ।
वैष्णवीं गरुडारूढां, श्यामां मधु-मदाकुलाम् ।।
घण्टां शरं कपालं च, चक्रं च कर-पङ्कजैः ।
दधानां पीत-वसनां, मुक्ता-मणि-विभूषिताम् ।।

वराह - वाहिनीं धूम्रां, वराह - सदृशाननाम् ।
फलकां मूषलं चैव, वरं खड्गं तथा परम् ।।
पाणि - पङ्कज - विभ्राणां चारु - भूषण - भूषिताम् ।
इन्द्र - नील - प्रभामैन्द्रीमैरावत - निषेदुषीम् ।।
चन्द्र-वक्त्रां च दधतीं, वज्र - शङ्ख - धनुः - शरान् ।
नानाऽलङ्कार - रचितां सदा भक्तानु - रागिणीम् ।।
भीम - वक्त्रां च चामुण्डां मुण्ड - मालावली - युताम् ।
साट्टहासां शवासीनां, मणि - मुक्ता - विराजिताम् ।।
कपालं खेटकं शूलं, खड्गं च कर - पङ्कजैः ।
विभ्राणां नील - मेघाभां, भावयेद् भक्त - वत्सलाम् ।।
सिंहासनां महा - लक्ष्मीं, पीताभां रत्न - भूषिताम् ।
मातु - लुङ्ग - फलाभीति - माला - पद्म - विधारिणीम् ।।

अब आवाहनादि मुद्राओं के द्वारा उन-उन शक्तियों का पूर्वोक्त स्त्रियों के शिर पर आवाहन कर शिर पर ही उनकी पूजा कर पुनः पाद्यादिक देकर स्थिरमन से स्वर्णादि स्थान भोज्य मण्डल मध्य में चव्य, चोष्य, लेह्य, पेय, भोज्य, भक्ष्य, आदि का निवेदन करे। यदि शक्तियाँ अदीक्षित हों तो उन सबके कानों में मायाबीज सुना दे। तदनंतर स्तोत्रपाठ करे। यथा—

शक्ति-स्तोत्र

ॐ मातर्देवि ! नमस्तेऽस्तु, ब्रह्म-रूप-धरेऽनघे!
कृपया हर विघ्नं मे, मन्त्र-सिद्धिं प्रयच्छ मे।।
माहेशि, वरदे, देवि ! परमानन्द- रूपिणि!
कृपया हर विघ्नं मे, मन्त्र-सिद्धिं प्रयच्छ मे।।
कौमारि, सर्व-विघ्नेशि ! कुमार-क्रीडने वरे!
कृपया हर विघ्नं मे, मन्त्र-सिद्धिं प्रयच्छ मे।।

विष्णु-रूप-धरे देवि ! विनता-सुत-वाहिनि !
कृपया हर विघ्नं मे, मन्त्र-सिद्धिं प्रयच्छ मे।।
वाराहि, वरदे, देवि ! दंष्ट्रोद्धृत-वसुन्धरे!
कृपया हर विघ्नं मे, मन्त्र-सिद्धिं प्रयच्छ मे।।
शक्र-रूप-धरे देवि! शक्रादि-सुर-पूजिते!
कृपया हर विघ्नं मे, मन्त्र-सिद्धिं प्रयच्छ मे।।
चामुण्डे! मुण्ड-मालाऽसृक्-चर्चिते भय-नाशिनि!
कृपया हर विघ्नं मे, मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।।
महा-लक्ष्मि, महोत्साहे! क्षोभ-सन्ताप-नाशिनि!
कृपया हर विघ्नं मे, मन्त्र-सिद्धिं प्रयच्छ मे।।
मिति-मातृ-मये देवि! मिति-मातृ-बहिष्कृते!
एके बहु-विधे देवि! विश्व-रूपे नमोऽस्तुते।।
एतत् स्तोत्रं पठेद्-यस्तु, कर्मारम्भेषु संयतः!
विदग्धां च समालोक्य, तस्य विघ्नं न जायते।।

यदि शक्तियाँ लज्जावती हों तो उन्हें उनकी इच्छा से एकांत स्थान में भोजनादि करावे। जब तक भोजनादि से वे तृप्त न हो जायें तब तक स्तोत्रपाठ करता रहे। आचमन, मुख-प्रक्षालनादि के पश्चात् मुखवास एवं ताम्बूलादि अर्पण करे। तब माला, गंध, चंदनादि प्रदान करे। बिंदुयुक्त दीर्घ के प्रत्येक को अन्त में नियुक्त करे। प्रत्येक शक्ति का चतुर्थ्यंत नामोच्चार कर अन्त में हृन्मंत्र बीज जोड़कर मन्त्री जप करे। यथाशक्ति क्रमपूर्वक जप कर उसे अर्पित कर स्तुति पढ़े। तदनंतर शक्तियों को नमस्कारपूर्वक विदा कर उनसे वर पाने की प्रार्थना कर सुखी हो। यदि अन्य शक्तियाँ न आवें तो अपनी कन्या, छोटी बहन, बड़ी बहन, मामी, माता, मा की सौत, वय एवं जाति से हीन भी, कोई स्त्री हो तो क्या? सभी मा की परम कला हैं, पूजनीय हैं। यदि उपर्युक्त

शक्तियों में से कोई भी न प्राप्त हो सकें तो संस्कार की हुई अथवा असंस्कृत विधवा की अपनी मा की पूजा करनी चाहिये। शक्तिपूजा समाप्त करने के पश्चात् पूजन कार्य करे।

साधक स्वकल्पोक्त विधि से देवी की पूजा कर प्रातःकाल जप प्रारम्भ कर मध्याह्न पर्यंत करे। जितनी जपसंख्या प्रारम्भ दिन की हो, उससे कम या अधिक अन्य दिनों में न करे तथा समय और दिनों का उल्लङ्घन भी न करे। तीनों काल में वह यथारुचि शुद्ध जल से स्नान करे तथा हविष्यान्न भोजन करे। जहाँ वह रहता हो, वहीं यदि गुरुदेव भी रहते हों तो नित्य एक बार जाकर उन्हें प्रणाम करे और यदि गुरुदेव दूर हों तो उस दिशा को प्रणाम करे। नित्य प्रातः उठकर पूजा में अथवा स्नानकाल में संस्कृत अथवा असंस्कृत कैसी भी कोई स्त्री हो, उसे नमस्कार करना चाहिये। चाहे वह किसी भी जाति की हो, कुलार्चनी कुलीनों का यही नियम है। पुरश्चरण करनेवाले को निम्न प्रकार आचरण पालन करना चाहिये।

गाना बजाना सुनना तथा नृत्य-दर्शन न करे। अभ्यंग लेप तथा पुष्पमाला धारण न करे। बिना स्नान किये विप्रों, शूद्रों एवं स्त्रियों का स्पर्श न करे। उष्ण जल-स्नान और देवता को अनिवेदित भोजन का ग्रहण परित्याग करे। नाना आचार तथा इधर-उधर भ्रमण का त्याग करे। देवी के निमित्त बलिदान के अतिरिक्त अन्य प्रकार की हिंसा—विशेष कर पशुहिंसा भूलकर भी न करे। दूसरे देवता के मंत्र की प्रशंसा और निंदा न करे। शिर पर पगड़ी बाँधकर, कुरता पहन कर, नग्न रहकर, केशों को छोड़कर, अपवित्र कर तथा अशुद्ध स्थिति में होकर एवं वार्तालाप

करता हुआ जप न करे। इसी प्रकार बिना ढँके हाथ तथा शिर ढँककर चिंता से व्याकुल चित्त और क्रुध होकर जप न करे। वीरासन शयन किया हुआ, सर्वत्र गमन करता हुआ, रास्ते में, अशिव स्थान में, अन्धकारमय स्थान में जप न करे। पतितों और अन्त्यजों के दर्शन होने पर या उनका भाषण सुनने पर, अधोवायु निकलने पर, जम्भा आने पर जप बन्द कर दे। उठकर आचमन प्राणायाम षडङ्गन्यास कर अथवा सूर्यदर्शन कर तब जप प्रारम्भ करे। स्त्री, शूद्र, पशु, भ्रष्ट साधक आदि से बातचीत न करे। ब्रह्मचर्य से रहे। शुद्ध वस्त्रधारी रहे तथा शुद्ध शय्या में शयन करे। नित्य शय्या को धोवे और एकाकी निर्भय शयन करे। केवल वेदागम पढ़े। रात्रि में हविष्यान्न का भोजन करे और दिन में शुद्ध होकर विद्या का जप करे। रात्रि में कुलाचार क्रम से देवी की पूजा करे। पूजाकर यथाशक्ति जप करे। पुरश्चरण काल में यदि पीठ का दर्शन हो तो यत्नतः पीठपूजा मन से करे।

उन देवियों का नाम जानकर पुनः कुलनाथ का ध्यान कर स्वयं वह अडिग मन से उन देवियों का स्मरण करता हुआ पूजा समाप्त करे। पूजाकाल में कोई हीन जाति की स्त्री अथवा अपनी स्त्री कोई भी हो, विधान से उसकी पूजा करे। जिन मंत्रों के जप में और होम में महर्षियों ने संख्या नहीं कही गई। आठ हजार की संख्या का नियम है। जिस मंत्र में संख्या का विधान है वहाँ मंत्रों की संख्या में युगक्रम से वृद्धि होती है। कल्पोक्त में जो संख्या कही गई है, वह त्रेता में दुगुनी होती है। द्वापर में तिगुनी और कलियुग में चौगुनी होती है।

—:०:—

तेरहवां उल्लास

१—कुण्ड-निर्माण

अब होम की विधि कहूँगा। वास्तुज्ञान-विशारद पहले भूमि की परीक्षा करे। शल्य आदि से उसे शुद्ध करे अथवा एक पुरुष प्रमाण तक खोद डाले। नौ, सात या पाँच हाथ प्रमाण चतुरस्र-समन्वित, विच्छिद्र, चतुर्द्वारयुक्त, दिव्य दृष्टि-विभूषित, दिव्य माला-परिवृत, तन्तुओं से परिवेष्ठित कुण्ड की रचना करे। चतुरस्र, योनि, अर्धचन्द्र, त्र्यस्र, षडस्र, षड्भुजाकार, अष्टास्र—ये कुण्डों के नाम हैं।

पूर्ववत् एक हाथ भूमि को सूत्र से चारों ओर बराबर एक सी नाप कर बनावे। इसे चतुरस्र कुण्ड कहते हैं। चौबिस अंगुल प्रमाण को एक हाथ माना गया है। कर्ता के दक्षिण हाथ की मध्यमा अंगुली के मध्य पर्व के दीर्घमान को अंगुल का प्रमाण कहते हैं। आठ यव का एक अंगुल होता है।

चतुरस्रीकृत क्षेत्र को विद्वान् पाँच हिस्सों में बाँटे। तबकोण के आधे-आधे प्रमाण से आगे के हिस्से के एक भाग को चिह्नित करे। तब उसी प्रमाण से सूत्र को घुमावे और दो सूत्र के चिह्न त्रिकोणाकार लगावे। इसे योनिकुण्ड कहते हैं।

चतुरस्रीकृत क्षेत्र को दश हिस्सों में विभाजित कर नीचे और ऊपर एक-एक हिस्सा छोड़ दे। सूत्र को आगे रखकर उसे उसी प्रमाण से घुमाने से अर्धचन्द्रकुण्ड बनता है।

क्षेत्र का चतुर्धा भेद करने पर दोनों पार्श्वों को चिह्नित करे। तब उसके आगे उसी प्रमाण से एक-एक भाग को चिह्नित करे। तब दो सूत्र लगावे; इसे त्र्यस्र कुण्ड कहते हैं।

अठारह अंश के क्षेत्र में बुद्धिमान् बाहर एक अंश में चिह्न करे। तब उसी प्रमाण में सूत्र को घुमाने से वृत्त कुण्ड बनता है।

मध्य सूत्र के दोनों पार्श्वों में क्षेत्र को आठ भागों में बाँट कर मध्य में दो भागों को शेष रखे। तब इसी प्रमाण से दोनों पार्श्वों में चार मत्स्य अङ्कित करे। तब छः सूत्र अङ्कित करे। इसे षडस्र कुण्ड कहते हैं।

चतुरस्रीकृत क्षेत्र को अठारह अंशों में विभाजित करे। एक भाग को बाहर रखकर उसी प्रमाण से वर्तुल अर्थात् गोलाकार सूत्र को घुमावे और कर्णिकादिकों के बाहर तीन वृत्त बनावे। यह पद्मकुण्ड हुआ।

पूर्वोक्त क्षेत्र को चौबिस भागों में विभक्त कर एक भाग को बाहर रखकर चतुरस्र बनावे। चतुरस्र के अन्तस्थ कोण के आधे के आधे प्रमाण से बाहर के चतुरस्र को दो कोणों से परिलांछित करे और प्रत्येक दिशा की ओर यथोचित् आठ सूत्रों को गिरावे। इसे अष्टास्र कुण्ड कहा है।

कुण्ड का जितना विस्तार होता है, उतनी ही उसकी गहराई होती है। कुण्डों का जैसा रूप होगा, उसकी मेखलायें भी उसी प्रकार की बनानी चाहिये। कुण्ड के आदि भाग से दो अंगुल त्याग कर मेखला बनानी चाहिये। कुण्डों की तीन मेखलायें होती हैं और उनके बनाने का क्रम मुष्टि मात्र तथा उनकी ऊँचाई एवं चौड़ाई दो, एक या आधे अंगुल की होनी चाहिये। अरत्नि प्रमाण कुण्ड की मेखलायें तीन और दो अंगुल की होती हैं। अठारह अंगुल प्रमाण को अरत्नि कहते हैं। बारह अंगुल का आधा हाथ होता है। एक हाथ के कुण्ड में मेखलाओं की नेमि चार, तीन और दो अंगुलों के क्रम से होती है। इसी क्रम से दो हाथ आदि वाले कुण्डों में वृद्धि कर लेनी

चाहिये। जैसे दो हाथ के कुण्ड की मेखलायें छः, चार और तीन अंगुलों की तथा चार हाथ के कुण्ड की आठ छः एवं छः हाथ के कुण्ड की दश, आठ, छः तथा आठ हाथ के कुण्ड की बारह, दश, आठ और दश हाथ के कुण्ड की मेखलायें चौदह, बारह और दश अंगुलों की होती हैं।

प्रत्येक कुण्ड की अपनी योनि होती है। वह पीपल-पत्रवत् छः, चार, दो अंगुल लम्बी और विस्तृत तथा उन्नत होनी चाहिये। योनि के पिछले भाग में नाल चार अंगुल का और तीन, दो, एक अंगुल के क्रम से मूलाग्र होना चाहिये। नाल और मेखला के मध्य में परिधि की स्थापना के लिये योनि के मध्य में सरन्ध्र नाल का स्थल से आरम्भ होता है। कुण्डों के कोणों में योनि न बनावे। मुष्टि, अरत्नि तथा एक हाथ के कुण्डों में जो योनि होती है, उससे अन्य कुण्डों की योनि को एक-एक अंगुल के क्रम से बढ़ाले। दो यव के क्रम से योन्यग्र की वृद्धि होती है। कुण्डों की अन्तर्नाभि कमलवत् बनावे अथवा जो जैसा कुण्ड उसके अनुरूप हो, यही इसका प्रमाण है। मुष्टि, अरत्नि, एक हाथ के कुण्डों की नाभि उत्सेध युक्त होती है। अन्य कुण्डों में दो, चार अंगुल की वृद्धि करनी चाहिये और यवद्वय के क्रम से नाभि की। योनिकुण्ड में योनि तथा अब्जकुण्ड में नाभि की रचना न करे।

नाभिक्षेत्र को तीन भागों में विभक्त करके कर्णिका और बाहर के दो अंशों से आठ पत्र बनावे। मुष्टिमात्र प्रमाण का कुण्ड शतार्घ कहा जाता है। सौ आहुति होम के लिये अरत्नि तथा हजार के लिये एक हाथ का कुण्ड बनाना चाहिये। कोण सूत्र के प्रमाण से दो हाथ का कुण्ड तथा चार हाथ के कुण्ड में भी इसी प्रकार समझना चाहिये। दश हजार हवन

में दो हाथ का और एक लक्ष में चार हाथ का कुण्ड माना गया है। अथवा एक हाथ के कुण्ड में एक लक्ष हवन करने की विधि है तथा जब दश लक्ष से अधिक हवन की संख्या बढ़े तब एक हाथ की अधिक वृद्धि कुण्ड में होती है। दश हाथ का कुण्ड कोटि हवन में देखा जाता है।

समस्त सिद्धियों का सम्पादन करनेवाला चतुरस्र कुण्ड है और योनिकुण्ड, पुत्र-प्रदाता तथा अर्धचन्द्रकुण्ड शुभप्रद है। त्र्यस्र कुण्ड शत्रुनाशक तथा वर्तुल शांतिकर्म में उपयुक्त है। छेदन मारण कर्म में पद्म सदृश षडस्र तथा अष्टास्र कुण्ड रोगशामक और वृष्टिप्रद है। अब्ज आकृष्टिकारक और वृत्त तथा त्रिकोणकुण्ड खेचरीसिद्धिदायक है। ब्राह्मणों के लिये चतुरस्र, क्षत्रियों के लिये वर्तुल, वैश्यों के लिये अर्धचन्द्र और शूद्रों के लिये त्र्यस्र कुण्ड इष्ट है। चतुरस्र कुण्ड सभी वर्णों के लिये है ऐसी कुछ तांत्रिकों की सम्मति है।

कुण्ड का स्वरूप प्रकृति देवी का परम शरीर है। पूर्व दिशा में शिर, दक्षिण और उत्तर में बाहु तथा पश्चिम में योनि और दोनों पैर एवं कुण्ड का भीतरी भाग उदर कहा गया है।

नित्य और नैमित्तिक कर्म स्थण्डिल (वेदी) में भी कर सकते हैं। अपने एक हाथ प्रमाण लम्बी-चौड़ी तथा एक अंगुल ऊंची चौकोर सूक्ष्म बालू से सुन्दर वेदी बनानी चाहिये।

२—स्रुक और स्रुवादि-रचना

पूर्वोक्त कुण्डों में किसी एक की रचना कर स्रुक् और स्रुच की रचना करे। इनकी विधि इस प्रकार है—बिल्व, शिंशप अथवा वट आदि दूधवाले वृक्षों में से किसी एक की सीधी शाखा को लाकर उसका विभाग करे। पहले एक हाथ तब छत्तिस अंश। बीस अंश का दण्ड होता है और आठ दण्डों

की वेदी और उस दण्ड का कण्ठ एक अंश का तथा उसका मुख सात भागों के प्रमाण का होता है। स्रुव के कण्ठ का विस्तार वेदी के तीन अंशों का माना गया है। उसका अग्रभाग कण्ठ के समान होता है। उसके मुख में घी के निकलने के लिये कनिष्ठिका अंगुली के प्रमाण का छिद्र बनाना चाहिये। अब वेदी के मध्य में एक अंश में कर्णिका बनावे और उसके बाहर चारों ओर दो अंशों में अवट (गर्त) बनावे। तब तीन अंशों में खात और आधे अंश में अवट के बाहर वृत्त बनावे। तब चारों ओर आधे अंश में दलों की रचना करे। तब वेदी के मुख में आधे अंश में वृत्तमेखला बनावे। वेदी का पृष्ठभाग कूर्माकृतिवत् होना चाहिये।

स्रुक के दण्ड का मध्यभाग छः अंगुलों का होना चाहिये और मुख का मूलभाग तीन अंगुल का तथा अग्रभाग चार अंगुल का। इसके दण्ड के मूल भाग में तथा मुख में दोनों ओर कुम्भ अर्थात् कपोल होते हैं। वहाँ हाथी अथवा हंस या सूकर का मुख बनाना चाहिये।

चौबीस अंगुलों का स्रुव बनाना चाहिये। इसके दण्ड का प्रमाण बाइस अंशों का तथा एक तोला घी जिसमें आ जाय, ऐसा चार अंशों का विस्तृत शिर होना चाहिये। इसके मृगपदाकृतिवाले मूल तथा अग्रभाग में कङ्कण-भूषित गण्डी दो अंगुलों की बनानी चाहिये। मूल भाग से छः अंगुल के भाग को तथा अग्रभाग को नौ अंगुल—त्याग कर स्रुव को ग्रहण करे और इसके मूल भाग को गुप्त रखे।

३—कुण्ड-संस्कार

अब कुण्डों के संस्कार करे। कुण्डों के अठारह संस्कार कहे गये हैं। मूलमन्त्र से वीक्षण कर अस्त्र से प्रोक्षण करे

अस्त्र से ही कुशों के द्वारा ताड़न और कवच बीज से अभ्युक्षण करे। अस्त्र से खनन और उद्धार तथा हृन्मन्त्र से प्रपूरण, अस्त्र से समीकरण और कवच से सेचन करे। हृत मन्त्र से कुट्टन, कवच से मार्जन, विलेपन और कलारूप की कल्पना करे। तब त्रिसूत्रीकरण कर हृदय से पूजा करे। शिर मन्त्र से वज्रीकरण और हृदय मन्त्र से शुभ कुशों के द्वारा चतुष्पथ तथा तनुत्र मन्त्र से तांत से दक्षपाटन करे। अथवा बीक्षणादि चार ही संस्कार करे।

कुण्ड के मध्य भाग में प्राक् और उदग् रेखाएँ हृदय मंत्र उच्चारण करता हुआ खींचे। प्रागग्र तीनों रेखाओं के क्रम से मुकुन्द, ईश और इन्द्र तथा उदगग्र रेखाओं के ब्रह्मा, वैवस्वत और चन्द्रमा देवता हैं। कुण्ड के मध्य में योनि, षट्कोण, अष्टपत्रमण्डल, वृत्त और भूगृह की रचना करे। तब तार से प्रोक्षण कर पीठदेवताओं की पूजा करे। मण्डल में कालाग्नि, रुद्र, आधारशक्ति, कूर्म, पृथ्वी, रत्नद्वीप, मणिगृह और कल्पवृक्ष की पूजा कर सुवर्ण वेदिका के मध्य में आग्नेयादि कोणों में यथाक्रम धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्यादि की तथा पूर्वादि दिशाओं में अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्यादि की पूजा करे। तबमण्डल के मध्य में परमानन्दकन्द, सम्विज्ञाल, प्रकृतिमय पत्रों, केशरों, मातृकामय कर्णिका, सूर्य, सोम, वह्निमण्डलों, सत्व, रज, तम, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा नाम के आदि अक्षर को अनुस्वार-सहित तथा इसके पूर्व प्रणव की योजना कर तथा अन्त में चतुर्थ्यंत और 'नमः' जोड़कर प्रत्येक की पूजा करे। तब वर्तुल में भुवनेश्वरी की तथा वागीश और वागीश्वरी के योग-स्वरूप की पूजा करे। तब 'पीठाय नमः' से कर्णिका में पूजा करे। नीलकमल के सदृश ऋतुस्नाता वागीश्वरी की वागीश्वर-सहित 'ह्रीं वागीश्वर्यै नमः' से षोडशोप-

चारों के द्वारा पूजा करे और वागीश्वरी की पूजा मूलमन्त्र से करे।

४—हवन-विधि

सूर्यकांतादि-सम्भूत अथवा किसी श्रोत्रिय के घर से ताम्रपात्र में सम्पुटित कर अग्नि को लाकर क्रव्याद अंश का त्याग कर नैर्ऋत्य दिशा की ओर अग्नि को स्थापित कर उसके यथोचित वीक्षणादि संस्कार करे। तब स्वकीय उदरस्थ वैन्दव अर्थात् परमात्म-स्वरूप अग्नि और आनीत भूमिस्थ अग्नि में एकता की भावना करे तथा अग्निबीज 'रं' से उसे चैतन्य करे। तब तार मंत्र से उसे अभिमंत्रित कर योनि-मुद्रा से अमृतीकरण करे। तब अस्त्र से रक्षा और कवच से अवगुण्ठन करे। उसकी पञ्चोपचार से पूजा कर पात्रस्थ उसे उठाकर तारमन्त्र उच्चारण करता हुआ कुण्ड के ऊपर तीन बार घुमाकर दोनों जानुओं को पृथ्वी पर रखकर अपने अभि-मुख शिव के बीज की भावना से देवीयोनि में उसे स्थापित करे। देवी और देव को आचमन आदि करावे। तब ज्वालिनी मुद्रा दिखाकर—

चित्-पिङ्गल ! हन हन, दह दह, पच पच, सर्वज्ञाऽऽज्ञापय स्वाहा

इस मन्त्र से अग्नि को प्रज्वलित करे और—

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे, जात-वेदं हुताशनम्।
सुवर्ण-वर्णममलं, समिद्धं विश्वतोमुखम्।।

इस मन्त्र से अग्नि को नमस्कार करे। तब अपने शरीर में लिंग, गुदा, शिर, मुख, नासिका और नेत्रों में अग्नि की सातों जिह्वाओं का न्यास करे। यथा—'स्यं हिरण्यायै नमः लिंगे' इत्यादि। कार्यों में गुणभेद से अग्नि की जिह्वाएँ तीन प्रकार की कही गई हैं जैसे हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा, अतिरक्ता यागकर्मों में सात्विकी कही गई हैं तथा

पद्मरागा, सुवर्णा, भद्रलोहिता, लोहिता, श्वेता, धूमिनी, करालिका—ये राजसी और कास्य कर्म में उपयुक्त तथा विश्व-मूर्ति, स्फुलिंगिनी, धूम्रवर्णा, मनोजवा, लोहिता, कराला, काली—ये तामसी हैं। इनका उपयोग मन्त्रीजन क्रूरकर्म में करते हैं। उपर्युक्त सातों जिह्वायें यथार्थ वर्णवाली हैं और इनके सुर, पितृ, गन्धर्व, यक्ष, नाग, पिशाच, राक्षस अधिदेवता हैं। 'सुराधिपतये हिरण्यायै नमः' इस प्रकार इनका भी न्यास करना चाहिये। तब अग्नि के अङ्गमन्त्रों का अपने शरीर के षडङ्गों में न्यास करे। यथा—

'सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। स्वस्ति-पूर्णाय शिरसे स्वाहा। उत्तिष्ठ-पुरुषाय शिखायै वषट्। धूम-व्यापिने कवचाय हुँ। सप्त-जिह्वाय नेत्र-त्रयाय वौषट्। धनुर्धराय अस्त्राय फट्।'

तब अग्नि की आठ मूर्तियों का मूर्द्धा, अंशों में, पार्श्वों में, कटि में, गुदा, लिंग में यथाक्रम न्यास करे। आठ मूर्तियाँ ये हैं—जातवेद, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमार तेज, विश्वमुख, देवमुख। इनका न्यास करते समय इस प्रकार प्रयोग करे—'हुँ अग्नये जातवेदसे नमो मूर्ध्नि' इत्यादि।

तब 'रं अग्न्यासनाय नमः' से अपने शरीर में आसन की कल्पना कर उस पर अग्नि की मूर्ति का ध्यान करे। यथा—

इष्टं शक्तिं स्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं जवाभम्।
हेमाकल्पं पद्म-संस्थं त्रिनेत्रं, ध्यायेद् वह्निं बद्ध-मौलिं जटाभिः॥

तब कुण्ड की मध्य मेखला पर विशुद्ध जल का सिंचन कर उस पर अगर्भित दर्भों को बिछावे। पूर्व दिशा को त्याग कर शेष दिशाओं में परिधियाँ रखे। प्रादक्षिण्य क्रम से ब्रह्मा आदि अष्ट मूर्तियों की पूजा कर 'वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्व-

कर्माणि साधय स्वाहा' इस मन्त्र से कुण्ड के मध्य में गन्धाक्षतादि से अग्नि को पूजा करे। तब मध्य में और कहीं कोनों में अग्नि की जिह्वाओं की पूजा करे। केशरों में उक्त प्रकार से अङ्ग देवताओं की पूजा करे। दलों में शक्ति और स्वस्तिक-धारिणी मूर्तियों की पूजा करे। दिशाओं में उक्त लक्षणवाले लोकपालों की पूजा कर दोनों हाथों से अधोमुख स्रुक् और स्रुवा को लेकर अग्नि में तीन बार तपाकर कुशों से उनके अग्र मध्य मूल का क्रम से मार्जन करे। प्रोक्षण की विधि यह है कि वाम कर से उन्हें ग्रहण कर दक्ष से प्रोक्षण करे। तब उन्हें तपा-कर कुशों को अग्नि में छोड़ दे। अपने दक्ष भाग में उन्हें कुशों के ऊपर रख दे। आज्यस्थाली को लेकर उसे अस्त्र मन्त्र से अर्घ्यजल द्वारा प्रोक्षित कर उसमें घी डालकर उसके वीक्षणादि संस्कार करे। कुण्डाग्नि से कुछ अङ्गारों को अलग निकाल कर हृदय मन्त्र पढ़कर उन पर आज्यस्थाली को रखे। इसे तापन संस्कार कहते हैं। तब दो कुशों को जलाकर उन्हें घी में डुबोकर कुण्डाग्नि में हृदयमन्त्र से छोड़ दे। इसे पवित्रीकरण कहते हैं। तब दो कुशों को जलाकर वर्म मन्त्र से घी के ऊपर घुमाकर अग्नि में छोड़ दे। इसे अभिद्योतन कहते हैं। प्रज्वलित कुशों को घी को दिखाकर अस्त्र मन्त्र से उन्हें अग्नि में रखे। इसे उद्योतन कहते हैं। तब घृत को अङ्गारों से अलग हटाकर और अङ्गारों को कुण्डाग्नि में छोड़ दे। तब जल का स्पर्श करे और प्रादेश-प्रमाण के दो कुशों को अंगुष्ठ और अनामिका से ग्रहण कर अस्त्र मन्त्र उच्चारण करता हुआ घी को तीन बार ऊपर की ओर उछाले। इसे उत्पवन कहते हैं। इसके बाद उक्त प्रकार ही घी को हृदय मन्त्र से स्वाभिमुख सम्प्लवन करने को सम्प्लवन कहते हैं। ये अग्नि के छः संस्कार हुए।

तदनन्तर प्रादेश-मात्र ग्रन्थि-सहित दो कुशों को लेकर घी-सहित दूसरे पात्र में रखकर शुक्ल और कृष्ण पक्षों का स्मरण करे। वाम में इडानाड़ी तथा दक्षिण भाग में पिंगला और मध्य में सुषुम्ना का ध्यान कर यथाविधि हवन करे। स्रुवा से दक्षभाग का घी लेकर हृदय मन्त्र से 'अग्नये स्वाहा' कह कर अग्नि के दक्ष नेत्र में हवन करे। इसी प्रकार वाम भाग का लेकर अग्नि के वाम नेत्र में पूर्ववत् 'सोमाय स्वाहा' से हवन करे। मध्य भाग के घी को लेकर हृदय मन्त्र से 'अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' से अग्नि के मध्य नेत्र में हवन करे। तब दक्षभाग का घी लेकर 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' से अग्नि के मुख में आहुति दे।

उपर्युक्त आहुतियाँ देने के समय आहुति-शेष घी को प्रोक्षणी पात्र में गिराता जाय इससे अग्नि के नेत्र और मुख का उद्घाटन होता है। तब तारमन्त्रपूर्वक व्याहृतियों का उच्चारण कर अग्नि के मन्त्र से तीन आहुतियाँ दे। तब क्रम से अग्नि की गर्भाधानादि क्रियाओं का सम्पादन करे। यथा—प्रणव से अलग-अलग आठ आहुतियाँ देने से अग्नि के गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, उपनिष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, आदि क्रियायें सम्पन्न होती हैं। शुभ कार्यों में विवाहांत क्रियायें तथा क्रूर कर्मों में मरणांत संस्कार किये जाते हैं, ऐसा आगमवेत्ताओं का मत है। अग्नि के माता-पिता की पूजा कर उन्हें अपने में युक्त करे। तब पाँच समिधायें घी में उनके मूल और अग्रभाग को डुबोकर अग्नि की जिह्वाओं तथा अङ्गमूर्तियों के मन्त्रों से यथाक्रम यथाविधि प्रत्येक के लिये एक-एक आहुति प्रदान करे।

तदनन्तर स्रुक् से घी को लेकर स्रुवा में चार बार रखकर उस स्रुवा को स्रुक् से ढँककर 'वौषट्' अन्त में जोड़कर अग्नि के मन्त्र से अग्नि में आहुति दे। तब विघ्नेश्वर के मन्त्र से

दश आहुतियाँ दे। सर्वतन्त्रों के मत से इसे सामान्य अग्निमुख कहा है। विघ्नेश्वर का मन्त्र यह है—'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।'

इसके बाद अग्नि में देवता के पीठ की पूजा कर अग्निरूप इष्टदेवता की पूजा करे। मूलमन्त्र से घृत की पच्चीस आहुतियाँ देवता के मुख में दे। इसे वक्रैकीकरण कहते हैं। अग्नि और स्वेष्टदेवता की अपने साथ ऐक्य भावना कर मूलमन्त्र से घी की एकादश आहुतियाँ दे। इसे नाड़ी-सन्धान कहते हैं। तब इष्टदेवता के मुख्यांगदेवता और आवरण-देवताओं के मन्त्रों से प्रत्येक को घी की आहुति एक एक दे। मधुरत्रयाक्त तिलों की जपसंख्या की दशांश आहुतियाँ दे। ये आहुतियाँ शूकरी, करसङ्कोची, हंसी और मुक्त कनिष्ठिका—आदि मुद्राओं में से किसी एक से दे। उपर्युक्त मुद्रायें अभिचार, पुष्टि और शांति आदि कर्मों में यथाक्रम ग्रहण की जाती हैं।

रिक्त हाथ से अग्नि में जो होम किया जाता है, उससे होता को पुण्यफल नहीं होता। जहाँ हविद्रव्य न बताया गया हो, वहाँ तिल और घी को हवि जानना चाहिये।

अब मैं यहाँ पर छिन्नमस्ता और कालिका के विषय में जो विशेषता है, उसे कहता हूँ। दिन में तिल, पुष्प, फल आदि जो भी हविष्यान्न हो, इनमें से किसी एक को मधुरत्रय से युक्त कर उससे जप का दशांश हवन करे और त्रिकोणकुण्ड के सन्निकट ही घी, शुद्धि, तृतीया से युक्त रात्रि का कल्प करे।

अब सर्वसिद्धि-प्रदात्री काम्य विधि का वर्णन करूँगा। मल्लिका, जाति और पुन्नाग के पुष्पों का हवन करने से मंत्री अति भाग्यवान् होता है। बिल्वफल और पत्रों के हवन से

वैभव तथा कमल पुष्पों से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। वश्य के निमित्त बन्धूक, बकुल, जवाकुसुम, किंशुक पुष्पों को मधु-मिश्रित कर हवन करे। लवण और मधुरत्रय के हवन से आकर्षण होता है। बञ्जुल की समिधा के हवन से शीघ्र वृष्टि होती है। गुडूची के खण्डों को दूध में मिलाकर हवन करने से ज्वर का नाश होता है। दूर्वा के होम से दीर्घायु और कदम्ब पुष्पों के हवन से वश्यता प्राप्त होती है। राई और नमक के हवन से शत्रु नष्ट होता है। मधुरसंयुक्त अन्न के हवन से निर्धन धन पाता है। सभी हवनीय द्रव्य मधुरत्रययुक्त होने चाहिये। नन्द्यावर्त के पुष्पों के हवन से मनुष्य वाग्मी होता है बिल्व-प्रसूनों के हवन से इच्छित लक्ष्मी प्राप्त होती है। पलास पुष्पों के हवन से मनुष्य तेजस्वी होता है। चन्दन, अगर, कपूर, गोरोचन, केशर के हवन से सम्पूर्ण विश्व को वश्य करे। निर्गुण्डी के हवन से मनुष्य बन्धन से छूटता है। निम्बतैल-संयुक्त लवण के हवन से शत्रु का नाश होता है। हल्दी का चूर्ण और नमक मिलाकर हवन करने से शत्रुओं का स्तम्भन होता है। रसीले पके हुये फलों और परिमलयुक्त पुष्पों के होम से वह समस्त ईप्सितों को प्राप्त करता है। वच के होम करने से वशीकरण होता है। शशक मांस को मधुमिश्रित कर हवन करने से सुवर्ण, धन, विद्या और नारी सुख मिलता है। काकपक्षों के हवन से विद्वेषण और काली मिर्च से शत्रु का नाश होता है। वट की बरोहों की दश हजार आहुतियाँ देने से आपत्ति-समूह नष्ट होता है। अपामार्ग की समिधाओं, जङ्गली तिलों तथा धानों से एक वर्ष-पर्यंत होम करे तो धान्याधीश होता है। एक वर्ष तक मधुमिश्रित दूर्वा के होम से दीर्घायु होता है। आरग्वध से समृद्धि तथा आज्य से धन, गोदुध से गो वृद्धि होती है। काम्य होम सदा प्रयत्न से दस हजार करे।

लतापुष्प-संयुक्त सौ पत्तों को विधिवत् अनेक बार अभि-मंत्रित कर संस्कृत अग्नि में यथाविधि होम करे तो इससे चालीस हजार पूजन होता है। यह क्रम जो पूर्ण करता है, उसे तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता; वह वाल्मीकि-सदृश कवि और सर्वसिद्धियों का भोक्ता होता है। घृत-मिश्रित रक्त पुष्पों से जो श्मशान में होम करता है; एवमेव तिल, भात, पायस (खीर) और घी आदि से होम करनेवाला समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करता है। इतना ही नहीं किन्तु जो जो कामना करता है, वह अवश्य पाता है। त्रिकोण कुण्ड की यथावत् साधित अग्नि में जो साधक हविष्य, भात, रक्तचंदन और पुष्प, विशेष कर काले पुष्पों से और इक्षुखंडों से भी श्मशान में होम करता है, वह धन में कुबेर हो जाता है तथा उसकी आज्ञा इन्द्र भी मानते हैं और पवनदेव के तुल्य बलवान् होकर वह देववत् इस भूमि पर जीवन-पर्यन्त विहार करता है। ध्यानपूर्वक दधिसिद्धान्न और तंडुलों से एक हजार जो होम करता है, उसे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। विद्याकामी शर्करायुक्त पायस से होम करे तो तुरन्त उसका मल नष्ट होकर चौदहों विद्यायें प्रस्फुरित हो जाती हैं।

बन्धूक कुसुमों को रक्तान्वित करके होम करने से स्त्री को सौभाग्य प्राप्त होता है तथा निःसन्देह सर्वसिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं। कदलीपुष्प और शाल मछली का होम यदि करे तो सर्वसिद्धियाँ प्राप्त कर अन्त में मुक्ति मिलती है। अक्षतों-सहित, विशेषतः महाष्टमी में, एक हजार बिल्वपत्रों के होम करने से मञ्जुल वाणी का लाभ होता है।

अब मैं होमद्रव्यों के प्रमाण का कथन करूँगा। होम में घी एक कर्ष, दूध एक सूती, पञ्चगव्य दूध के बराबर और मधु उसी के समान कहा है। गुड़ आधा पल और शक्कर गुड़ के

ही प्रमाण में । दुग्धान्न बहेरा के सदृश, दही प्रसूति-प्रमाण, लावा धान मूठी भर और पृथुक सूती भर । खीर आधा ग्रास, ईख एक पर्व और फूल की एक पंखुड़ी तथा पूप एक लेवे ।

केले नारङ्गी आदि फल एक एक, मातुलुङ्ग के चार टुकड़े तथा कटहल के दश टुकड़े, नारियल के आठ और मालूर के तीन खण्ड होम करे । कैथा के तीन, उर्वारुक के तीन, अन्य फलों के एक-एक, समिधा दश अंगुल की, दूर्वा तीन-तीन, गुरिच चार अंगुल प्रमाण, धान मूठी भर, मूंग, उरद, तिल भी उतने ही, सरसों मूठी भर, तंडुल आधी मूठी अथवा मूठी भर, गेहूँ लाल कलमाख्य धान विशेष मूठी भर, नमक शुक्ति प्रमाण लेना चाहिये । मिर्च बीस नग, गूगल बेरतुल्य, हींग उसी के समान और गोरोचन भी गूगल के प्रमाण, चन्दन, अगर, कपूर, केशर, कस्तूरी तितड़ी के बीजों के बराबर लेना कहा है ।

समिधा के होम में वैश्वानर को खड़ा हुआ, घी के होम में सोया हुआ तथा अन्य शेष वस्तुओं के होम में बैठा हुआ ध्यान करे । समस्त कर्मों में अग्नि के मुख में होम करे । अग्नि की प्रज्वलित शिखा को मुख समझे । अग्नि के वर्णभेद से शुभाशुभ जानना चाहिये । सुवर्ण, सिंदूर, बालसूर्य, केशर और मधु के वर्ण का अग्नि शुभावह होता है । यदि अग्नि में होम के समय नगाड़े, बादल, हाथी और इन्द्र की ध्वनि होती हो तो शुभ है । नाग, चम्पा, पुन्नाग, पाटला, यूथिका, लाल कमल, नीलकमल, श्वेतकमल, घी और गूगल की गंधवाले अग्नि को शुभ कहा है । प्रदक्षिण, कम्परहित, सुप्रभ अग्नि की शिखायें शुभप्रद तथा अन्य अनिष्टकारक होती हैं । कुन्द

पुष्प और चन्द्रमा-सदृश अग्नि का धूम्र शुभप्रद है। यदि कृष्ण हो तो वह साधक का और श्वेत वर्ण राष्ट्र का अहितसूचक है। काकस्वर-सन्निभ, गर्दभस्वर सदृश अग्निध्वनि सर्वविनाशिनी तथा दुर्गंधयुक्त अग्नि होता को दुःखद है। टूटी हुई तथा आवर्तयुक्त अग्निशिखा मृत्यु तथा धननाश की द्योतक होती है। शुक के पङ्खों के सदृश और कपोल के वर्ण के समान अग्नि का धूम्र अश्वों तथा गायों की शीघ्र हानि बताता है। इस प्रकार के दोषों के होने पर प्रायश्चित्त-स्वरूप घी की पचीस आहुतियाँ मूलमंत्र से दे। स्वीय संख्या-विधि से होम कर तब शेष कार्यों को करे। मूलमंत्र पढ़ स्रुक से पूर्णाहुति करे। तब कुम्भ में देवता का आवरण-सहित उद्वासन कर व्याहृतियों से अग्नि की जिह्वाओं को एक-एक आहुति देकर जल से अपना अभिषेक करे। अग्नि को अपने में युक्त कर सपरिस्तर-परिधियों को होम में जला दे, नित्य होम में न जलावे।

५—तर्पण

अब मैं तर्पण की विधि कहूँगा। होम समाप्त करने के बाद होम का दशांश तीर्थोदक, दूध, घी, सुरा अथवा गन्धोदक से तर्पण करे। होम के अन्त में किसी बृहत् पात्र में जल भर उसमें देवता के पीठ की भावना करे और होमपात्रादि में अपने इष्ट का यन्त्र बनाये और उसमें सपरिवार देवी की पूजा कर पहले यथाक्रम गुरु आदि का तर्पण करे। तब एक-एक अञ्जलि से रश्मिवृन्द को तृप्त कर पूर्वोक्त द्रव्यों से विधिपूर्वक देवता के मुख में दशांश तर्पण करे।

प्रसङ्गतः काम्य तर्पण की विशेषता का वर्णन करता हूँ—इष्टदेवी को तृप्त कर यथोक्त संख्या से महादेवी का तर्पण

कर काम्य तर्पण करे। जल से तथा रक्त जल से, मज्जा या स्वकीय केशों से अथवा आकर्षित कन्या के कुलप्रक्षालन से, मेढ़ा-महिष के रक्त से या नर रक्त से, मूषक या मार्जार के रक्त से परदेवता का तर्पण करे। ऐसा तर्पण करने से साधक साक्षात् सिद्धेश्वर होता है तथा उसे द्राक्षा रस-सदृश मधुर कवित्वशक्ति प्राप्त होती है और बृहस्पति के समान विद्वान् होकर वह देवीवत् पृथ्वी पर सहर्ष जीवन व्यतीत करता है। उसे पाप तथा पुण्य कुछ भी न होकर वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

काले अगर के द्रव से तर्पण करे तो इस जगती को वश्य करे। चन्दन-मिश्रित जल से मनुष्य सौभाग्य प्राप्त करता है। केशर-मिश्रित जल के तर्पण से अखिल जगत् का स्तम्भन होता है। मिश्री मिले जल से बृहस्पति के तुल्य विद्वान् होता है, कपूर-मय जल से असुरों का भी आकर्षण होता है। गोरोचन युक्त जल से दुष्ट ग्रहों का प्रभाव नष्ट हो जाता है। सम्पूर्ण शास्त्रों में तर्पण शुभदायक कहा गया है। उन्मुखी, कालिका और रात्रि कल्प का तर्पण समभाग सुरा, मत्स्य और मांस से करे। तब सम्पूर्ण संख्या में स्वकल्पोक्त विधि से तर्पण सम्पन्न करे।

६—अभिषेक

तर्पण के अनन्तर साधक अपने हृत्पद्म में सपरिवार स्वेष्ट-देवता को स्थापित कर तर्पण के दशांश गन्धोदक से अभिषेक करे। कुम्भमुद्रा से सुगन्धित जल को लेकर मूलमन्त्रपूर्वक 'अमुकदेवतां अभिषिञ्चामि' के अन्त में हृदय मन्त्र लगाकर अपने शिर में समन्त्र उसकी भावना करे। तब हृदय-कमल में अंशावरणमय देवी का ध्यान कर यथासंख्या तर्पण कर गणों का तर्पण करे।

७—ब्राह्मण-भोजन

अभिषेक कर चुकने के पश्चात् यथामन्त्रयुक्त ब्राह्मणों को देवता समझ कर उन्हें भोजन करावे। अभिषेक के दशांशसंख्यक ब्राह्मणों की विधिवत् पूजा कर देवता के प्रिय द्रव्यों से उन्हें भोजन करावे। छिन्नमस्ता और कालिका के दिवाकल्प के दशांश ब्राह्मणों को हविष्यान्न भोजन अति भक्तिभाव से करावे। उन-उन मन्त्रों के जाननेवाले ब्राह्मणों का रात्रिकल्प करे। उन्हें हेतु, मांस, मत्स्य आदि पदार्थ देवे। देवता-बुद्धि से ब्राह्मणों को भोजन कराकर साधक सिद्ध होता है।

जप, होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मण-भोजन—यह पञ्चाङ्ग-सिद्धि की पुरस्क्रिया है। जप, होम, तर्पण, अभिषेक, अघमर्षण, सूर्यार्घ्य, जलपान, प्रणाम और पूजन, ब्राह्मणों का भोजन—यह दशांश पुरस्क्रिया है। उन-उन कर्मों का दशांश होमादिक विद्वान् को करना चाहिये। पूर्वोक्त विधि से अघमर्षण और सूर्यार्घ्य करके उसका दशांश जलपान करना चाहिये। अपने को देवता रूप की भावना कर दक्ष हाथ में जल लेकर मूलमन्त्र के अन्त में 'अमुकदेवतां पाययामि नमः' कहकर उक्त जल पी जाय। तत्पश्चात् यथोक्तसंख्यक जलपान कर मूलमन्त्र के अन्त में 'अमुकदेवतां नमामि' यह कह जलपान का दशांश नमस्कार करे। तब विधिपूर्वक देवता का पूजन करे। तब नमस्कार कर दशांश ब्राह्मणों को भोजन करावे। विप्राराधन मात्र से व्यङ्ग साङ्ग होता है। अथवा उसी दिन उन-उन जपों का दशांश होमादि करना चाहिये।

होमकर्मादि करने में असमर्थ व्यक्तियों को द्विगुण जप करना चाहिये। इतर वर्णों को त्रिगुण विधि है। दशक के

अङ्गकर्मों में यदि कहीं कोई कर्म हीन हो जाय तो उसका दशांश करे किन्तु दशशून्य न करे।

तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक सम्भारों द्वारा गुरु की पूजा कर मन्त्रों की विशुद्धि के हेतु दक्षिणा दे।

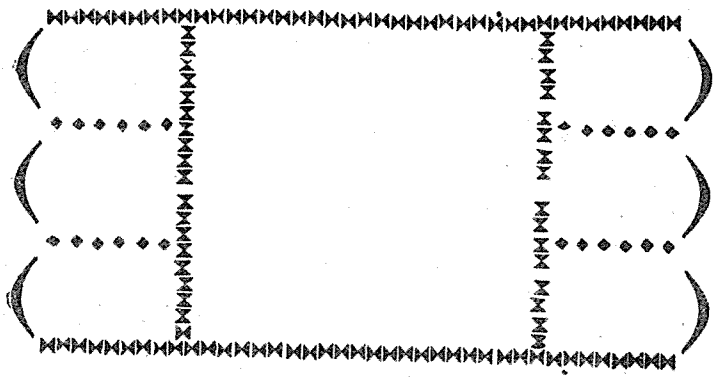

चौदहवाँ उल्लास

१—पुरश्चरण की दूसरी विधि

अब हम पुरश्चरण की दूसरी विधि कहते हैं। श्मशान में मन्त्र का पुरश्चरण करना सर्वश्रेष्ठ है। वैष्णव, गाणपत्य, शैव तथा दूसरे मन्त्र के उपासक और शाक्त तो विशेष रूप से श्मशान में पुरश्चरण करें। मङ्गल के दिन एक प्रहर रात के बीतने पर दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी तथा कृष्णपक्ष में विशेष रूप से साधक मन्त्र का पुरश्चरण करे। वह श्मशान में बिना धोई हुई चिता के पास जाय। वह मांस-सहित अन्न, गुड़, छाग, सुरा, पिष्टक, पायस और भाँति-भाँति के फलरूपी नैवेद्य अपने कल्प के अनुसार लेकर जाय। भय-रहित साधक खड्गधारी सहचरों के साथ पुष्पादि लेकर जाय। वस्त्रालङ्कारों से विभूषित वह पूर्व की ओर मुँह कर चिता के पश्चिम भाग में बैठे और मूलमन्त्र के अन्त में 'फट्' लगाकर उससे अपने उसपूजा के स्थान का प्रोक्षण करे। तब गुरुदेव का ध्यान कर अपना बाँया पैर आगे रख वह सर्वप्रथम वहाँ गणेश, वटुक, योगनी और मातृकाओं का यथाविधि पूजन करे। तब वह हाथ जोड़कर यह पढ़े—

ये चात्र संस्थिता देवा, राक्षसाश्च भयानकाः।
पिशाच-यक्ष-सिद्धाश्च, गन्धर्वाप्सरसां गणाः।।
योगिन्यो मातरो भूता, सर्वाश्च खेचराः स्त्रियः।
सिद्धिदास्ता भवन्त्वत्र, तथा च मम रक्षकाः।।

यह पढ़ चुकने पर वह चिता के मध्य में तीन पुष्पाञ्जलि दे। तत्पश्चात् पूर्वादि चारों दिशाओं में श्मशानाधिपति, भैरव, कालभैरव और महाकाल का पूजन पाद्यादि से यथाविधि कर उन्हें बलियाँ दे। उनके बलिमन्त्र इस प्रकार हैं--

ॐ हूं श्मशानाधिप ! इमं सामिषान्नं बलिं गृह्ण गृह्ण, गृह्णापय गृह्णापय, विघ्न-निवारणं कुरु, सिद्धिं मे प्रयच्छ स्वाहा ।

—पञ्चगव्य या दुग्ध से बलि पूर्व दिशा में दे।

ह्रीं भैरवाय इमं सामिषान्नं बलिं गृह्ण.... स्वाहा ।

—यह बलि पूर्ववत् दक्षिण दिशा में दे।

हूं काल-भैरव! हूं इमं सामिषान्नं बलिं ...स्वाहा।

—यह बलि पूर्ववत् पश्चिम में दे।

हूं महा-काल ! इमं सामिषान्नं बलिं...स्वाहा ।

—यह बलि पूर्ववत् उत्तर में दे।

तत्पश्चात् चिता के मध्य में तीन बलियाँ दे। यथा---

काल-रात्रि, महा-कालि! कालिके, घोर-निःस्वने!
गृहाणेमं बलिं मातर्देहि सिद्धिमनुत्तमाम्।।

—इस मन्त्र से कालिका को बलि दे।

ॐ हूं भूत-नाथ, श्मशानाधिप! गृहाणेमं बलिं देहि सिद्धिं।

—इस मन्त्र से भूतनाथ को बलि दे।

हूं सर्व-गणाधिपतये नमः। इमं बलिं गृहाण गृहाण।

—इस मन्त्र से सर्वगणाधिप को बलि दे।

अब साधक अस्थियों का प्रोक्षण करे। तब पीठ में मंत्र का न्यास कर वह भूर्जपत्र या वटपत्र में चक्र बनावे और उसमें अपना मन्त्र लिखे। तब उसे अपने आसन पर रखे। तब वह आसन पर पद्मासन में बैठे। तदनन्तर वह 'हूं हूं ह्रीं ह्रीं कालिके वज्रदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान दारय हन हन शवशरीरे महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हुं फट्' इस मन्त्र से लोहे की शलाकों को अभिमन्त्रित कर अपनी दसों दिशाओं में फेंक दे।

तब साधक अपने कल्प के अनुसार भूतशुद्धि आदि कर षोढान्यास या प्रणव का न्यास करे। प्रणव का न्यास इस प्रकार है कि मातृकायुक्त प्रणव का मातृका न्यास के स्थानों में न्यास करे और प्रणवयुक्त मातृकावर्णों का मातृकान्यास के स्थानों में न्यास करे। अब वह इष्टदेवी का विधिवत् पूजन कर ध्यानपूर्वक इष्टमंत्र का एकाग्र होकर जप करे। यदि मंत्र एकाक्षर हो तो उसे दस हजार जपे, दो अक्षर का हो तो आठ हजार और तीन अक्षर का हो तो पाँच हजार जपे। यदि अधिक बड़ा हो तो एक हजार जपे। रात्रि से प्रारम्भ कर उदयकाल तक जप करता रहे। जप के प्रारम्भ में पशुबलि दे और अन्त में भी।

तरुण, सुन्दर, कृष्णवर्ण और घाव आदि के चिह्नों से रहित बलिपशु को लेकर उसे उत्तर मुख खड़ा करे और स्वयं पूर्वमुख खड़ा हो। उसे अपनी बाईं ओर कर उसका प्रोक्षण अर्घ्यजल से निम्नमन्त्र द्वारा करे—

ॐ नर्मदा यमुना गङ्गा, कर-तोया सरस्वती ।
कावेरी चन्द्र-भागा च, सिन्धु-भैरव-सागराः ।।

अज-स्नाने महेशानि ! सान्निध्यमिह कल्पय ।
ॐ पशु-पाश-विनाशाय, हेम-कूट-स्थिताय च।।
पराघराय परमेष्ठिने, हूङ्काराय च मूर्त्तये ।

अब साधक बलिपशु का पूजन करे। ब्रह्मरन्ध्र में ब्रह्मा की, मस्तक में पृथ्वी की, कानों में आकाश की, गले में सर्वतोमुख की, नेत्रों में ज्योति की, मुख में विष्णु की, माथे में चन्द्र की, दाहनी कनपटी में इन्द्र की, बाईं कनपटी में अग्नि की, गले में समवर्तिन की, केशाग्र में निऋति की, भौंहों में प्रचेतस की, नासा के मूल में श्वसन की, स्कन्ध में कुबेर की और हृदय में शेषनाग की पूजा करे। तब पशु को सिंदूर और लाल पुष्पों की माल्यादि से विभूषित कर उसे निजदेव-स्वरूप देख-कर निम्नमंत्र से उसकी वन्दना करे—

छाग ! त्वं बलि-रूपेण, मम भाग्यादुपस्थितः।
प्रणमामि ततः सर्व-रूपिणं बलि-रूपिणम् ।।
चण्डिका-प्रीति-दानेन, दातुरापद्-विनाशिने ।
चामुण्डा-बलि-रूपाय, बले ! तुभ्यं नमोऽस्तु ते ।।
यज्ञार्थे बलयः स्रष्टाः, स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
अतस्त्वां घातयाम्यद्य, तस्माद् यज्ञे बधोऽबधः।।

इसके बाद 'ऐं ह्रीं श्रीं' इस मंत्र को पढ़ पशु के शिर पर तीन पुष्पाञ्जलियाँ दे। तदनन्तर साधक खड्ग का पूजन करे और उसे हाथ में लेकर उसका ध्यान करे। यथा—

कृष्णां पिनाक-पाणिं च, काल-रात्रि-स्वरूपिणम्।
उग्रं रक्तास्य-नयनं, रक्त-माल्यानुलेपनम्।।
रक्ताम्बर-धरं चैव, पाश-हस्तं कुटुम्बिनम्।
पिबन्तं च रुधिरं, भुञ्जानं क्रव्य-संहतिम्।।

तब वह खड्ग की पूजाकर उसे नमस्कार करे। यथा—

आशी-विष-समः खड्गस्तीक्ष्ण-धारो दुरासदः।
श्रीगर्भो विषयश्चैव, धर्म-पाल! नमोऽस्तु ते ।।

तब हाथ जोड़कर निम्न मन्त्र से खड्ग को अभिमंत्रित करे—

रसना ! त्वं चण्डिकायाः सुर-लोक-प्रसाधक !
ह्रीं ह्रीं, कालि कालि, वज्रेश्वरि ! ल्लैह - दण्डाय हृदयं अं खड्गाय नम : । ह्रीं ह्रीं, कालि कालि, विकट-दंष्ट्रे ! स्फें स्फें फेत्कारिणि! खादय खादय, छेदय छेदय, सर्व-दुष्टान् मारय मारय, अजं खड्गेन छिन्दि छिन्दि, किलि किलि, च्रिकि चिकि, पिब पिब, स्फ्रों स्फ्रों, किलि किलि, कालि ! कालि ! नमः।

तब खड्ग उठा 'ओं हूं फट्' यह मन्त्र पढ़ता हुआ पशु का छेदन करे। तदनन्तर बलिपशु का रुधिर एक पात्र में लेकर उसमें जल, सेंधानमक, शक्कर और मधु मिलाकर तथा गन्ध और पुष्प भी डालकर निम्न मन्त्र से देवता को अर्पित करे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कौशिकि रुधिरेण आप्यायतां। तब बलिपशु के मुण्ड को, उस पर दीपक रख, देवता को दे।

इस प्रकार पुरश्चरण समाप्त कर गुरुदेव को दक्षिणा देकर प्रसन्न करे। पूजा सम्भार को जलाशय में किसी गर्त में विसर्जित कर दे।

२—पुरश्चरण की अन्य विधियाँ

अथवा वन में अस्थिशय्या पर बैठकर सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक जप करने से इष्टमन्त्र की सिद्धि होती है। अथवा दोनों पक्ष की दोनों अष्टमी दोनों चतुर्दशी में सूर्योदय से

सूर्यास्त तक जप करने से मन्त्र सिद्ध होता है। अथवा चन्द्र तथा सूर्यग्रहण के पर्व में नदी के भीतर प्रवेश कर नाममात्र जल में स्थित होकर अथवा शुद्ध जल से स्नान कर पवित्र स्थान में समासीन होकर ग्रास से लेकर ग्रासांत तक जप करे और उसके बाद दशांश क्रम से होमादि करे। उसके बाद महती पूजाकर ब्राह्मण भोजन करावे। इस प्रकार मंत्र सिद्ध होने पर गुरु की पूजा कर दक्षिणा दे उन्हें प्रसन्न करे। सूर्य-ग्रहणकाल से बढ़कर पुरश्चरण के लिये दूसरा समय नहीं है। इस काल में जो-जो भी कर्म किये जाते हैं, उसका अनन्त फल होता है। अथवा शरत्काल में चतुर्थी से नवमी तक भक्तिपूर्वक पूजा कर रात्रि में अकेले अंधेरे स्थान में एक हजार बार मंत्र का जप करे और अष्टमी से लेकर नवमी तक उपवास करे। ऐसा करने से उस मंत्र की सिद्धि अवश्य होती है।

पन्द्रहवाँ उल्लास

१—कुमारी-पूजा

अब तंत्र-विधान के अनुसार कुमारी की पूजा कहता हूँ। कुमारीपूजा के बिना होमादि क्रियायें निष्फल होती हैं। दो वर्ष के वय से लेकर आठ वर्ष तक की कन्या कुमारी मानी जाती है अथवा सोलह वर्ष के वय तक की अपुष्पा कन्यायें तंत्र में कुमारी कही गई है। इन्हीं कन्याओं का कुमारी-रूप में पूजन विहित है। एक वर्ष की कन्या सन्ध्या, दो वर्ष की सरस्वती, तीन वर्ष की त्रिधामूर्ति, चार वर्ष की कालिका, पाँच वर्ष की सुभगा, छः वर्ष की उमा, सात वर्ष की मालिनी, आठ वर्ष की कुब्जिका, नव वर्ष की कालसङ्कर्षा, दस वर्ष की अपराजिता, ग्यारह वर्ष की रुद्राणी, बारह वर्ष की भैरवी, तेरह वर्ष की महालक्ष्मी, चौदह वर्ष की पीठनायिका, पन्द्रह वर्ष की क्षेत्रज्ञा और सोलह वर्ष की कन्या वाचिका देवी के रूप में पूजी जाती है।

कुमारी की पूजा में वाग्भव बीज से जल दे। मायाबीज से पाद्य, लक्ष्मी बीज से अर्घ्य, कूर्मबीज से चंदन, शक्तिबीज से पुष्प, कूर्चबीज से धूपादि दे। इस प्रकार कुमारी का पूजन कर कुमारी के अङ्गों में अपने क्रम के अनुसार न्यासादि करे। तदनंतर विशेष न्यास करे। यथा—

ऐं क्लीं श्रीं क्लौं हसौः कुल-कुमारिके! हृदयाय नमः।
ऐं ह्रीं श्रीं क्लां ऐं स्वाहा शिरसे स्वाहा।

ऐं क्लीं सैं शिखायै वषट् ।
ऐं कुल-वागीश्वर ! वागीश्वरि ! कवचाय हुं ।
क्लीं अस्त्राय फट् ।
ऐं सिद्धि-जयाय पूर्व-वक्त्राय नमः ।
ऐं जयाय उत्तर-वक्त्राय नमः ।
ऐं क्लीं श्रीं कुब्जिके ! पश्चिम-वक्त्राय नमः ।
क्रीं कालिके ! दक्षिण-वक्त्राय नमः ।

तदनंतर कुमारी के अङ्ग में मातृका-वर्णन्यास तथा षडंगन्यास करे। इस प्रकार न्यास कर कुमारी को अपने इष्टदेवता के रूप में ग्रहण कर उसका पूजन और न्यासादि करे। अन्त में अपने इष्टमंत्र का अष्टोत्तर शत जप करे। जप समाप्ति के बाद कुमारी की तीन बार प्रदक्षिणा करे। तब उसे नमस्कार कर उसका विसर्जन करे। तब उसे सुवर्ण या रौप्य की दक्षिणा दे। कुमारी पूजा में जातिभेद नहीं किया जाता। इस पूजा से नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। महाभय के उपस्थित होने पर इस पूजा-द्वारा उसका निवारण अनायास ही हो जाता है।

अब कुमारी-पूजा का दूसरा विधान कहते हैं। सन्ध्यादिक नव कन्याओं को लाकर उनका पूजन करे; साथ ही नव कुमारों का भी। पाँच वर्ष के कुमार का गणेश के रूप में पूजन करे। इन सबका देवताबुद्धि से पूजन कर सुस्वादिष्ट पदार्थों से इन्हें सन्तुष्ट करे। नवरात्र के पर्व पर प्रतिदिन एक की वृद्धि के क्रम के अनुसार कुमारिकापूजन करे। इस पूजा का फल अन्त में देवता को समर्पित करे।

२—प्रमदा पूजन

अथवा नवरात्रकाल में नवों दिन प्रमदा पूजन करे। हल्लेखा, गगना, रक्ता, महोत्सुका, करालिका, इच्छा, ज्ञाना, क्रिया और दुर्गा के नामों से वटुक तथा गणेश के साथ यथा-विधि प्रमदाओं का पूजन करे।

अथवा प्रमदा-पूजन तुला, मेष आदि सभी संक्रांतियों में गौरीशिव, रमाविष्णु, वाणीब्रह्मा, शचीइन्द्र, रोहिणीचन्द्र, स्वाहाअग्नि, प्रभारवि, भद्रकाली-वीरभद्र और भैरवी-भैरव के रूप में युग्म भाव से करे। आदि में 'ऐं ह्रीं श्रीं' और अन्त में 'नमः' जोड़कर उन-उन नामों से यथाविधि पूजन करे। तब तत्त्वादि प्रदान कर उन्हें संतुष्ट करे।

३—समयाचार-स्तव

समयाचार का यथाविधि पालन न हो सकने पर निम्न स्तव का प्रातःकाल पाठ करना आवश्यक है—

त्रिपुरा त्रिपुरेशी च, सुन्दरी पुर-वासिनी ।
श्रीमालिनी च सिद्धाऽम्बा, महा-त्रिपुर-सुन्दरी।।
प्रकटाश्च तथा गुप्तास्तथा गुप्त-तराः परा।
सम्प्रदायाः कुल-कौला, रहस्याति-रहस्यगाः।।
परापर-रहस्या च, तथा कामेश्वरी शुभा।
भग-माला नित्य-क्लिन्ना, भेरुण्डा वह्नि-वासिनी।।
महा-वज्रेश्वरी दूती, त्वरिता कुल-सुन्दरी।
नित्या नील-पताका च, विजया सर्व-मङ्गला।।
ज्वालांशु-मालिनी चित्रा, वशिनी शुभगा तथा।
पूर्णाख्या च तथा ज्ञेया, कामेशी मोदिनी तथा।।

विमला चारुणा देवी, जयिनी कुल-भैरवी ।
सर्वेश्वरी तथा कौली, वागीशी सर्व-कामिनी।।
सिद्धेश्वरी तथा चोग्रा, दुर्गा महिष-मर्दिनी ।
स्वप्नावती शूलिनी च, मातङ्गी सुर-सुन्दरी ।।
महा-काली महोग्रा च, चित्र-रूपा महोदरी ।
प्राण-विद्या तथैकाक्षी, चैक-पादा महाङ्कुशा ।।
वामा शिवा तथा ज्येष्ठा, सुरूपा चारु-भाषिणी।
त्रिखण्डा त्रिशिरा शौरी, गौरी विन्ध्य-निवासिनी।।
विभुर्जाया मधुमती, तथा नील-सरस्वती ।
काली कुण्ड-मयी कुण्ड-रूपिणी बन्धु-रूपिणी।।
बाला पूर्णा महा-देवी, नील-लक्ष्मीति कथ्यते।
क्षोभिणी नादिनी भद्रा, ललिता बहु-रूपिका ।।

सर्व-सम्पत्-करी तारा, भवानी विश्व-वासिनी ।
त्रोटेश्वरी महा-विद्याः, कथितास्तव भैरव ! ।।
उपासकान् महा-देव! शृणुष्वैक-मनाः स्वयम् ।
मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च, मन्मथस्तदनन्तरम् ।।
लोपामुद्रा मुनिर्नन्दी, शुक्रः सुन्दः शिवस्तथा।
क्रोध-भट्टारकश्चैव, पञ्चमी च प्रकीर्त्तिता ।।

दुर्वासा व्यास-सूर्यौ च, वशिष्ठश्च पराशरः ।
और्वो वह्निर्यमश्चैव, नैर्ऋतो वरुणस्तथा ।।
वायुर्विष्णुः स्वयम्भूश्च, भैरवो गणकस्तथा ।
अनिरुद्धो भरद्वाजो, दक्षिणामूर्तिरेव च ।।
गणपः कुलपश्चैव, वाणी गङ्गा सरस्वती ।
धात्री शेषः प्रमत्तश्च, उन्मत्तः कुल-भैरवः ।।

क्षेत्र-पालो हनूमांश्च, दक्षो गरुड़ एव च।
प्रह्लादः शुक-देवश्च, रामो रावण एव च।।
काश्यपः कुम्भ-कर्णश्च, यमदग्निर्भृगुस्तथा।
बृहस्पतिर्यदु-श्रेष्ठो, दत्तात्रेयो युधिष्ठिरः।।
अर्जुनो भीमसेनश्च, द्रोणाचार्यो वृषा-कपिः।
दुर्योधनस्तथा कुन्ती, सीता च रुक्मिणी तथा।।
सत्य-भामा द्रौपदी च, उर्वशी च तिलोत्तमा।
पुष्प-दन्तो महा-वृद्धो, बाणः कालश्च मन्दरः।।
कैलासः क्षीर-सिन्धुश्च, उदधिर्हिमवाँस्तथा ।
नारदो भीष्म-कर्णौ च, मेरुश्चारुण एव च ।।
जनकश्च तथा कौत्सः, कथिता ब्रह्म-साधकाः।
महा-विद्या-प्रसादेन, स्व-स्व-कर्म-समन्विताः ।।
एतेषां शुभ-नामानि, नित्या-विद्योपसेविनाम् ।
प्रातः-काले शुचिर्भूत्वा, यः पठेत् प्रयतात्मना।।
पूजयेद् वा शुचिर्भूत्वा, प्रसीदामि कुल-प्रिये !
अशुचिर्वा निरालम्बा, सालम्बा वा कुलान्तिके।।
नित्य-पूजा-फलं तस्य, ददामि वरमीप्सितम् ।
चक्र-सङ्केतवंक चैव, गुरु-सङ्केतवंक तथा।।
मन्त्र-सङ्केतवंक चैव, नाम-सङ्केतवंक तथा ।
समाचार-सङ्केतमवृत्वा योऽत्र वर्तते ।।
जप-पूजार्चनं होमोऽभिचाराय प्रकल्पते ।।
एवं स्तोत्रं पठित्वा तु, सङ्केतमानयेद् ध्रुवम् ।।

४—नैमित्तिक पूजा

वैशाख शुक्ला प्रतिपदा के दिन ब्राह्म मुहूर्त में उठ स्नान-

संध्या कर शुद्ध एकांत स्थान में पूर्वाभिमुख बैठ अपने को गंधपुष्पादि से यथाविधि अलंकृत कर यथाकल्प न्यासादि कर देवभाव में स्थित हो मत्स्य-मांसादि भक्ष्य-भोज्य से समन्वित अर्घ्य देवता को देकर उसका बचा हुआ शक्तिसहित स्वयं ग्रहण करे। तदनंतर सूर्यमण्डल में देवता का ध्यान करते हुये एक हजार आठ बार इष्टमंत्र का जप करे। जपफल देवता को समर्पित करे। इस प्रकार कृष्णा चतुर्दशी के अन्त तक करे। अमावास्या के दिन तीन, पाँच, सात या नव कौलिकों का पूजन करे। इस मास-पूजा से देवता प्रसन्न होता है और ईप्सित फल प्रदान करता है।

किंचित् उदीयमान सूर्य के मंडल में आवरणों के सहित इष्टदेवता का ध्यान कर चक्रपूजा के क्रम से षोडशोपचारों से उसका पूजन कर इष्टमंत्र का जप करे। तब कुलदीप दिखावे, यही पूजा मध्याह्न अथवा संध्या समय भी की जा सकती है। इस पूजा से मनोवांच्छित सिद्धि प्राप्त होती है।

माघ शुक्ला प्रतिपदा के दिन संध्या समय स्नान कर श्वेत वस्त्र पहन सायंसंध्योपासन कर उपर्युक्त सूर्यमंडल पूजन की विधि से चंद्रमंडल में देवता का ध्यान करता हुआ चंद्रास्त तक पूर्ववत् पूजा और इष्टमंत्र का जप करे। इस प्रकार प्रतिदिन चतुर्दशी तक पूजन करे। पूर्णिमा के दिन यथाशक्ति कौलों और शक्तियों का पूजन करे। जो यह शुक्ल-पक्षार्चन करता है, वह पापविमुक्त हो सर्व ऐश्वर्यों का अधिकारी होता है और शिव के समान इस भूमि पर विचरण करता है।

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा के दिन स्नान-आचमन कर स्व-कल्पानुसार न्यासकर महानिशा में सूर्यार्चन की विधि के अनुसार सब द्रव्यों के सहित स्थित हो अनामिका और

अंगुष्ठ की मुद्रा से घी की बत्ती जलावे। पाँच रंगों से चित्रित अष्टदलकमल पर स्थापित मद्य से भरे हुए कलश के ऊपर सुन्दर कांसपात्र के ऊपर उक्त दीपक को स्थापित करे। उसके सामने उत्तराभिमुख बैठकर दीपक की लौ में आवरणों के सहित इष्टदेवता का ध्यान कर उसका विधिवत् अर्चन करे। फिर दीपस्थ देवता का स्मरण करता हुआ एक हजार आठ बार मूलमंत्र का जप करे। इस प्रकार कृष्णा चतुर्दशी तक नित्य पूजन करता रहे। अमावस्या के दिन शक्तिसहित कौलिकों का पूजन करे। इस प्रकार यजन करनेवाला सब समृद्धियों से पूर्ण होकर संसार में सम्मान को प्राप्त करता है।

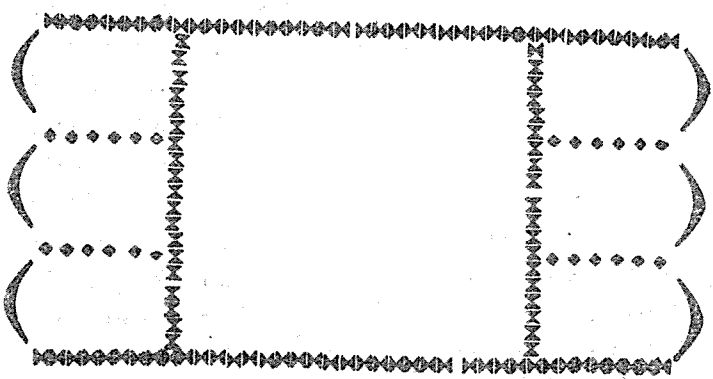

सोलहवाँ उल्लास

१—शक्ति-दीक्षा

शक्ति के अदीक्षित होने से सिद्धि की हानि होती है। जो स्त्री दीक्षित नहीं है, उससे कुलपूजन कैसे हो सकता है? यदि पर स्त्री हो तो उसे स्वयं दीक्षा देनी चाहिये। यदि अपनी पत्नी हो तो कुलभक्त गुरु से प्रार्थना कर उसे दीक्षा दिलावे। कुलाचार से शिक्षिता, मालाओं और अलंकारों से सुशोभिता, रक्तवस्त्र-विभूषिता, ताम्बूल खाए हुये, सिन्दूर और अंजन से अलंकृता स्त्री दीक्षा के लिए उत्सुक होकर अभीष्ट गुरु से कहे—'देवीवाहं देवदेव उपदेशं समाचर।' इस पर गुरु 'देवोऽहं' यह कह कर पूर्वोक्त मंत्रों से ब्राह्मी आदि अष्ट माताओं को जप-द्वारा प्रसन्न करे। फिर देय मंत्र के न्यास शिष्या के अंगों में करे। शिष्या को अपनी पुत्री समझकर गुरु उसके ललाट पर शक्तिचक्र तीन बार लपेटे और उसमें कामकला लिखे। फिर देय मंत्र के द्वारा दर्भ से देवता का नाम-सहित आवाहन करे और यथाविधि उसका ध्यान तथा पूजन करे। तदनन्तर शिष्या के बाएँ कान में ऋषि छन्द के सहित मूल विद्या का तीन बार उपदेश करे। इसके बाद शिष्या का नामकरण कर उससे यह कहे—

अद्य-प्रभृति पुत्रि ! त्वं, कुल-पूजार्चने रता।
स-कुलाज्ञां समादाय, लज्जाऽऽलस्य-विवर्जिता।।
यथोपदिष्ट-विधिना, सामरस्यं समाचर।।

इस प्रकार गुरु से अनुज्ञा प्राप्त कर शिष्य भूमि पर नत-मस्तक हो गुरुदेव को प्रणाम कर कहे—

त्राहि नाथ ! कुलाचार-पक्षिणी-पद्म-नायक !
हत्पादाम्भोरुहच्छायां, देहि मूर्ध्नि यशो-धन !।।

यथाविधि गुरु की स्तुति कर शिष्या उन्हें दक्षिणा प्रदान करे। इस प्रकार दीक्षा ग्रहण कर शिष्या मूर्ध्नि में गुरुदेव का ध्यान करती हुई कुलामृत से उनका तर्पण कर कुल का ध्यान कर प्राप्त मन्त्र का जप करे। पुरुषों के लिये नियमादि हैं, स्त्रियों के लिए नहीं। उन्हें न न्यासादि करने की आवश्यकता है, न पूजन की ही। रात्रि में केवल षडंग-न्यास कर मूलमंत्र का जप करना चाहिये।

२—काम्य पूजन

अब शाक्तों के काम्य पूजन का वर्णन करते हैं। रात्रि में कुलाचार की विधि से इष्टदेवता का यंत्र बना अवरणों के सहित देवी का लाल कमलों से पूजन करे। इस प्रकार एक महीने तक पूजन करने से साधक के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और उसके घर में लक्ष्मी स्थिर होकर निवास करती है। कुलाचार से रात्रि में यदि साधक भक्तिपूर्वक जवापुष्पों से चक्रराज का पूजन एक मास करे तो उसके सारे पाप नष्ट होते हैं और वह धनवान होता है। इसी प्रकार यदि केतकी के ताजे पुष्पों से पूजन करे तो एक महीने में साधक अतुल सौभाग्यशाली होता है। बंधूकपुष्प से पूर्ववत् एक मास पूजन करने से त्रैलोक्य वशीभूत होता है और कमल पुष्प-सहित बिल्व पत्रों से पूर्ववत् पूजन करने से सब पापों से मुक्त होकर समृद्धि-वान होता है।

३—त्रिपुरा बीज साधन

अब त्रिपुरा के बीजों की साधना कहते हैं। साधक शुक्ल वस्त्र पहन, श्वेत गन्धादि से भूषित होकर, शुक्ल पुष्पमाला धारण कर, श्वेत आसन पर बैठकर, शुक्ल पुष्पों और श्वेत रंग की नैवेद्य से, जो लड्डू, खीर, दुग्ध, नाना प्रकार के अन्नों, शर्करा, नाना प्रकार के फलों से युक्त हो, वाग्भव बीज की साधना करे। वागीश्वरी का ध्यान करते हुए साधक वाग्भव बीज का जप करे। ध्यान यह है—

कर्पूर-धवलां शुभ्र-पुष्पाभरण-भूषिताम् ।
अत्यन्त-शुभ्र-वसनां, वज्र-मौक्तिक-भूषणाम् ।।
मुक्ता-फल-समुद्भूत-जप-माला-लसत्कराम् ।
पुस्तकं वर-दानं च, दधतीमभय-प्रदाम् ।।

इस प्रकार ध्यान कर वागीश्वरी का यथाविधि पूजन करे। फिर यह भावना करे कि वागीश्वरी मूलाधार से ब्रह्मरंध्र-पर्यन्त पीयूष-वर्षा करती हुई ज्योतिर्मय होकर जिह्वाग्र में स्थित है। यह भावना करता हुआ साधक पुरश्चरण की संख्या के अनुसार वाग्भव बीज का जप करे। इस साधना से अत्यंत मूर्ख और जड़ व्यक्ति भी, जो एक पद तक शुद्धतापूर्वक न बोल सकता हो, बृहस्पति के समान वाग्मी और विद्वान् हो जाता है।

कामबीज की साधना रक्त मन्दिर में स्थित होकर रक्तवस्त्र, रक्तालङ्कार और लाल चन्दनादि से भूषित हो नाना प्रकार के लाल पुष्पों तथा विविध प्रकार की लाल रंग की नैवेद्यों से करनी चाहिये। कामेश्वरी का ध्यान करते हुए साधक काम-बीज का जप करे। ध्यान यह है—

मूलादि-ब्रह्म-रन्ध्रान्तं, स्फुरद्दीप्ति-स्वरूपिणीम्।
बन्धूक-कुसुमाकार-कान्ति-भूषण-भूषिताम्।।
इक्षु-कोदण्ड-पुष्पेषु, वराभय-लसत्-कराम्।
उद्दीप्त-कान्ति-सिन्दूर-भाल-त्रिनयनान्विताम्।।

इस प्रकार ध्यान कर कामेश्वरी का यथाविधि पूजन करे। तदनन्तर यथोक्तसंख्या के अनुसार कामबीज का जप करे। इस साधना के फलस्वरूप त्रैलोक्य क्षण भर में वशीभूत होता है। और साधक साक्षात् कामदेव के समान जगत् में शोभायमान होता है।

शक्तिबीज की साधना में साधक को स्व-शरीर में मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक व्याप्त शक्तीश्वरी का निम्न प्रकार ध्यान करना होता है—

स्रवत्-पीयूष-धाराऽभि-वर्षन्तीं विष-हारिणीम्।
हेम-प्रभा-भासमानां, विद्युल्लता-सम-प्रभाम्।।
स्फुरच्चन्द्र-कला-पूर्ण-कपालं वरदाभये।
ज्ञान-मुद्रां च दधतीं, साक्षादमृत-रूपिणीम्।।

इस प्रकार ध्यान कर सुवर्ण रंग के उपचारों से पूजन कर पूर्ववत् यथोक्तसंख्या के अनुसार शक्ति बीज का जप करे। इससे साधक नाना प्रकार के विघ्नों, भूतप्रेतादि बाधाओं और व्याधियों का अति शीघ्र नाश करने में समर्थ होता है।

जो साधक उक्त त्रिकूटमयी भगवती त्रिपुरा का 'नाभिमण्डलहृत्पद्ममुखमण्डलमध्यगा पद्मरागमणिस्वच्छा' परिपूर्ण-रूप में ध्यान करता हुआ साधना में तत्पर होता है, वह आठ गुना अधिक ऐश्वर्यवान् तुरंत होता है। मातृचक्र उसके शरीर में ही होता है, जिसके प्रताप से वह पुत्रवान्, धनवान्, धीर

होकर सुखी होता है। चक्रराज की रचना कर उसमें परिपूर्णा श्री त्रिपुरेश्वरी का पूजन करने से उत्तम खेचरी सिद्धि प्राप्त होती है। चौंसठ कोटि महातेजस्वी योगिनियाँ उक्त चक्रराज में आकर स्थित रहती हैं, इसमें सन्देह नहीं। पूर्णविद्या अर्थात् पूरे मंत्र के जप से सभी साधक के वशीभूत होते हैं। वाग्भव से वाक्पतित्व प्राप्त होता है, कामबीज से कामदेव समान होता है और शक्तिबीज से शिवत्व प्राप्त होता है। कूटत्रय के जप से सर्वसिद्धि होती है।

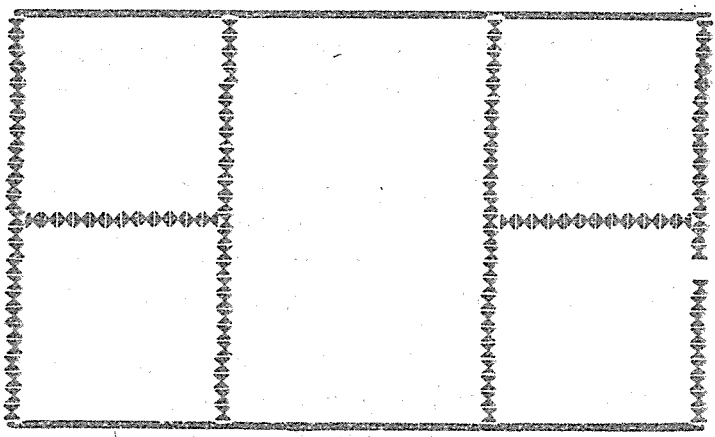

सत्रहवाँ उल्लास

१—मन्त्रशिखा

अब मंत्रों की सिद्धि करानेवाली शिखा का उल्लेख करता हूँ, जिसके ज्ञान मात्र से मंत्रसिद्धि होती है। मूलाधार के रन्ध्र में सर्पाकार जो शक्ति है और जो मंद-मंद शब्द करती रहती है, उसके ब्रह्मरंध्र में जाने और फिर अपने स्थान पर आने के क्रम में ध्यान लगाने से सब मंत्रों को जाग्रत करनेवाली मंत्रशिखा जाग्रत होती है। यह जो सृष्टि चार प्रकार की है और यह जिसकी योनि से उत्पन्न होती है, उसी में लय होती है। यही योनिमुद्रा है, जिसके बन्धन से सभी मंत्र सिद्ध होते हैं। स्थानस्थ मंत्र वरदायक होते हैं और ध्यानस्थ फलप्रद। स्थान-ध्यान से रहित सुसिद्ध मंत्र भी वैरी हो जाते हैं। जिन स्थानों पर मन्त्र सिद्ध होते हैं, वे हैं सकल, निष्कल, सूक्ष्म, सकल-निष्कल, कलाभिन्न और कलातीत। सकल ब्रह्मरंध्रस्थ है, उसके ऊपर निष्कल है। सूक्ष्म मानस है और सकल-निष्कल हृदयस्थ है। कलाभिन्न बिंदुस्थ है और उसके ऊपर कलातीत है। इन स्थानों में स्थित मंत्र स्थानस्थ कहलाते हैं। देवता का हृदय में ध्यान कर मन्त्र जपना चाहिये। ये ध्यानस्थ मंत्र कहलाते हैं अथवा प्रणव से सम्पुटित कर जप करने से दुष्ट मंत्र भी सिद्ध होता है। जिसकी जिस मन्त्र में दृढ़ भक्ति होती है, वह उसको नियत संख्या में जप करने मात्र से सिद्ध हो जाता है।

२—सिद्धिदायिनी पूजा

ब्राह्मी आदि अष्टमाताओं के साथ साधक चतुष्पथ, नदीतट, वटमूल, त्रिशूलक, प्रेतभूमि, बिल्वमूल, बाजार या राजगृह में जाकर सिंदूर से कुश द्वारा वेदी पर बड़ा यंत्र लिखे। फिर वहाँ कुल की कुलरस से विधिवत् पूजा करे। यथाविधि तर्पण कराने के बाद निशा में जप करे। इस प्रकार एक लक्ष जप करने से मंत्र की सिद्धि होती है।

सब पीठों में कामरूप पीठ बहुत फलप्रद है। यहाँ साधक यदि एक बार भी पूजा करता है तो भगवती सब पीठों को छोड़कर उसके शरीर में वास करती हैं। उससे भी अधिक प्रशस्त कामाख्या योनिमण्डल है जहाँ कोटियों गणों के साथ महिषमर्दिनी निवास करती है। वहाँ एक लक्ष जप करने से निश्चय सिद्धि होती है।

अथवा सब पीठों में महिषमर्दिनी का यजन करे। अन्तर्मातृकाओं का ध्यान करते हुये षट्चक्रों में यथाक्रम उनका न्यास करे। फिर विविध बाह्य मातृकाओं का न्यास कर शिर से लेकर पैर तक और पैर से लेकर सिर तक पाँच बार मूलमन्त्र से व्यापक न्यास करे। तदनन्तर निम्न प्रकार ध्यान करे—

ध्यायेत् कालीं महा-दैत्य-युद्ध-राग-महोन्मुखीम्।
दक्षिणे चक्र-खड्गौ च, बाणं शूलं तथैव च ।।
वामे शङ्खं तथा चर्म, धनुस्तर्जनमेव च ।
बिभ्रतीं तीव्र-बाणं च, महिषे तु निषेदुषीम् ।।
पीताम्बर-धरां देवीं, पीनोन्नत-कुच-द्वयाम् ।
जटा-मुकुट-शोभाढ्यां, पितृ-भूमि-सुखावहाम् ।।

इस प्रकार अपने हृदयकमल में ध्यान कर मानसोपचारों

से देवी का पूजन करे। फिर 'सोऽहं' यह भावना कर मस्तक पर फूल छोड़कर घटस्थापन करे। पीठपूजा कर सदाशिव का पूजन-तर्पण करे। फिर यंत्र में मूलमंत्र से परिकल्पित परदेवता का ध्यानपूर्वक आवाहन करे। महादेवी की पूजा और तर्पण कर उनके बाईं ओर गुरुपंक्ति की पूजा तथा तर्पण करे। तब नारद का पूजन-तर्पण करे। आठों कमलदलों में पूर्वादिक्रम से दुं दुर्गा, वां वरवर्णिनी, आं आर्या, कां कनकप्रभा, क्रीं कृत्तिका, आं अभयप्रदा, कां काली, सूं सुरागिणी से पूजन-तर्पण कर इनका जप करे। दलों के अग्रभाग में आयुधों की पूजा और तर्पण करे। इसके बाद ब्राह्मी आदि अष्टमाताओं का दलों में पूजन तर्पण करे। तदनन्तर भूपुर इंद्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके अस्त्रों का यथाक्रम पूजन और तर्पण करे। फिर पूर्ववत् देवी का पुनः पूजन-तर्पण करे। तर्पण करने के बाद मंत्र का जप करे। मंत्रोद्धार इस प्रकार है—

भान्तं वियत् स-नयनं, श्वेतो मर्दिनी ठ-द्वयम्।
अष्टाक्षरी समाख्याता, विद्या महिष-मर्दिनी।।

प्रणव, माया, वधू, कवच या काम आदि बीजों को प्रारम्भ में लगाकर उक्त मन्त्र का जप करने से अष्टवर्गों की प्राप्ति होती है। वाग्भव लगाकर जप करने से वाक्शुद्धि होती है। इस मन्त्र की जप-संख्या ८ लाख है। इसका दशांश हवन करे। जप कर चुकने पर भगवती की स्तुति पढ़े। यथा—

जय देवि, जगद्धात्रि! त्रिपुराद्ये, त्रिदैवते !
भक्तेभ्यो वरदे देवि! महिषघ्नि! नमोऽस्तु ते ।।
रोग-विघ्न-विनाशाय, कुलाचार-समृद्धये ।
कराल-वदने, श्यामे! नमस्ते सुर-सुन्दरि! ।।
कुल-भक्त-प्रसन्नास्ये!, शङ्कर-प्राण - वल्लभे !
रक्त-मांस-समाकीर्ण-वदने! त्वां नमाम्यहम् ।।

इस स्तोत्र का पाठकर शेष क्रिया यथाविधि समाप्त करे।

३—मंत्रसिद्धि के उपाय

पुरश्चरण करने पर यदि मंत्र सिद्ध न हो तो निम्न उपायों से साधना करनी चाहिये—

(१) द्रावण—वरुण बीज से मन्त्र को ग्रंथित करे। उस मन्त्र को शिल्ह, कर्पूर, कुंकुम, उषीर और गोरोचन से लिखे। फिर उसे क्षीर, आज्य, मधु और तोय में छोड़े। पूजा, जप और होम से द्रवित होकर मन्त्र सिद्ध होता है।

(२) बोधन—द्रावण से यदि मन्त्र सिद्ध न हो तो सारस्वत बीज से सम्पुटित कर मन्त्र का जप कर उसका बोधन करे।

(३) वशीकरण—बोधन से भी सिद्धि न हो तो रक्तचन्दन, कुष्ठ, हरिद्रा, मदन और शिला से भोजपत्र पर मन्त्र को लिखकर कण्ठ में धारण करे। यह वशीकरण है।

(४) पीडन—वश्य से सिद्धि न होने पर अधरोत्तर योग से दैरों तक जप कर अधरोत्तररूपिणी देवता का ध्यान करे और अर्कदुग्ध से मन्त्र को लिखकर उक्त मन्त्र से दिन-प्रतिदिन होम करे। यह पीडन है।

(५) पोषण—बाला के व्यक्षर बीजों से मन्त्र को सम्पुटित कर उसका जप करे और गोदुग्ध तथा मधु से मन्त्र को अपने हाथ में लिखे। यह पोषण है।

(६) शोषण—सिद्धि न होने पर वायुबीज से मन्त्र को संपुटित कर शव की भस्म से उसे लिखे और गले में धारण करे। यह शोषण है।

(७) दाहन—अग्निबीज को मन्त्र के एक एक अक्षर के आगे-पीछे, ऊपर-नीचे ब्रह्मवृक्ष के तेल से लिखे और उसका यन्त्र बनाकर गले में पहने। इससे मन्त्र सिद्ध होता है।

—:*:—

अठारहवाँ उल्लास

सिद्धि चिह्न

यदि साधक को सहसा धूप या पुष्प की सुगंध ज्ञात हो या स्त्रियों का मधुर सम्भाषण सुन पड़े या स्वप्न में बैल, हाथी या घोड़े पर वह सवार हो तो समझे कि मन्त्र सिद्ध हो गया। स्वप्न में स्त्री-समूह का दर्शन या गजादिशैलशिखरों पर विहार या राजा का दर्शन, स्त्रियां द्वारा नृत्य-गीत या विशाल भवन, रथ या नौका का दर्शन हो तो मन्त्र सिद्ध समझना चाहिये। पताका, देवमूर्ति, रुधिर, अपने शरीर में रक्त या मदिरा का लेप करना, मांस—ये सब स्वप्न में दिखाई पड़ना मन्त्रसिद्धि का लक्षण है। गोमांस या अन्य मांस का लाना या स्पर्श करना या भक्षण करना, गुरु-परमगुरु आदि का प्रसाद, स्नेह आदि प्राप्त करना स्वप्न में दिखाई दे तो मन्त्र सिद्ध समझे। अकाल में पनस का दर्शन वा भक्षण, अगम्यागमन, खड्ग या फलक, अमृत, पुस्तक, शव, वस्त्राभूषण, लाल माला या लाल फूल का दर्शन यदि स्वप्न में हो तो समझे कि मन्त्र सिद्ध हो गया। शिवलिंग, पीठादियात्रा में देव-दर्शन, उद्यान, वन, ब्राह्मण, यति, फलों के लोलुप बालक या भिक्षुक, पशु-पक्षी, शंखादिध्वनि, उत्सव, वेणुवीणा का शब्द, विचित्र दर्शन, अपरिचित व्यक्ति से बातचीत, नष्ट द्रव्य का मिलना, अदृश्य व्यक्ति द्वारा स्तुति, मंत्र का मिलना, गुरुपुत्री, पत्नी और साधकों का दर्शन, अलुवान्धि—इन सबका स्वप्न में आना मंत्रसिद्धि का लक्षण है।

अब स्वप्न के दुष्ट लक्षण कहता हूँ। स्वप्न में काले वर्ण के वीर को देखना और उससे प्रहार पाना, परस्त्रीगमन, विनाश, मरण, राजकोप, अग्नि वायु-पशुद्वारा आत्मवध, गुरुकोप, अन्य मंत्र के प्रति श्रद्धा या अपने देवता के अर्चन की निंदा—ये सब दिखाई दें तो अनिष्ट की संभावना समझे। इसकी शांति का उपाय यह है—

रात्रि में गणेश, वटुक, क्षेत्रपाल और योगिनियों की क्रमशः पूजा करे और उन्हें बलि प्रदान करे। इसके पश्चात् कुमार, वटुक, लक्ष्मी, स्वशक्ति, पंच क्षेत्रेश, योगियों सहित योगिनी की यथाविधि पूजाकर उन्हें बलि प्रदान करे। इससे स्वप्नदोष दूर होकर मंत्र सिद्ध होगा।

मूलमन्त्र के अन्त में मातृका वर्णों की योजना कर उससे प्रातःकाल जल को पचीस बार अभिमंत्रित कर उसका पान करे। इस प्रकार तीन महीने तक प्रयोग करने से साधक वाग्मी और कवि होता है। छः महिने में वाक्पति और श्रुतिधर होता है। आठ महीने में सर्वमन्त्रज्ञ हो विश्वपूज्य होता है। दो वर्ष के प्रयोग से आठों सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और तीन वर्ष में शिवत्व प्राप्त होता है। अपनी जिह्वा पर प्रदीपकलिकाकार में मूलमन्त्र का और शुक्लवर्ण में इष्टदेवता का ध्यान करते हुये उसका जप प्रातःकाल एक हजार आठ बार जप करने से उपर्युक्त फल तीन महीने में प्राप्त होता है।

नाभिमात्र जल में स्थित होकर सूर्यमण्डल में इष्टदेवता का ध्यान करता हुआ यदि साधक एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करता है तो उसे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

—:❀:—

उन्नीसवाँ उल्लास

षट्कर्म

अब षट्कर्मों की उत्तम विधि कहता हूँ। शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मारण ये षट्कर्म कहलाते हैं। रोग, कृत्या और दुष्ट ग्रहों की आपत्ति दूर करना 'शान्ति' है। सभी लोगों को वश में करना 'वश्य' है। सबकी प्रवृत्तियों का निरोध करना 'स्तम्भन' है। प्रेमियों के बीच द्वेष उत्पन्न करना 'विद्वेषण' है। दिक्काल और देवता आदि का विचार कर ये कर्म करने चाहिये : वश्यादि में दूर्वा की लेखनी से, आकर्षण में मोरपंख से और विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण में काकपक्ष की लेखनी से यंत्रादि लिखे। रति, वाणी, रमा, ज्येष्ठा, दुर्गा और काली—ये क्रमशः षट्कर्म-देवता हैं। तत्तत्कर्म के आदि में इनका पूजन विहित है।

बुध, इज्य और रवि से संयुक्ता पंचमी, द्वितीया, चतुर्थी और सप्तमी—ये तिथियाँ शान्ति कर्म में, गुरु और सोमवार-युक्त षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी और नवमी पौष्टिक कर्म में; रविवार और शुक्र से युक्त अष्टमी, नवमी, दशमी और एकादशी आकर्षण कर्म में; मन्द भानुयुक्त अमावास्या, नवमी, प्रतिपदा, पूर्णमासी विद्वेषण में; मन्दवार युक्त कृष्णा चतुर्दशी, अष्टमी और प्रदोष उच्चाटन में; मन्दारार्क दिनों से युक्त कृष्णपक्ष की चतुर्दशी अष्टमी अमावास्या मारण में; बुध और सोमवार युक्त पंचमी, दशमी, पूर्णमासी स्तम्भन में प्रशस्त हैं।

शुभ ग्रह के काल में शुभ कार्य, रिक्तार्क में रौद्र कर्म और मृत्युयोग में मारण कर्म करना चाहिये। हेमन्त में शान्तिकर्म, वसन्त में वश्य कर्म, शिशिर में स्तम्भन, ग्रीष्म में विद्वेषण, वर्षा में उच्चाटन और शरद् ऋतु में मारण कर्म करना चाहिये। शान्तिकर्म में गो और मेष का, वश्य और स्तम्भन में व्याघ्र का, विद्वेषण में गज का, उच्चाटन में भालू का और मारण में मेष, महिष या अश्व का चर्म आसन के लिये विहित है। शांति आदि षट्कर्मों में क्रमशः पद्म, स्वस्तिक, विकट, कुक्कुट, वज्र और भद्रक ये आसन तथा पद्म,पाश, गदा, मुशल वज्र और खड्ग ये छः मुद्रायें प्रशस्त हैं।

षट्कर्म के देवताओं के वर्ण क्रमशः श्वेत, रक्त पीत, मिश्र, कृष्ण और धूम्र हैं। जिस देवता का जो वर्ण है, उसी वर्ण के पुष्पादि उपहार ग्रहण करने चाहिये। मूंगे और लाल रंग की मणियों की माला वश्य और पौष्टिक कर्म में; मन्त्र वर्णों की संख्या बराबर गुरियों की माला आकर्षण में, साध्य के केश के सूत्र में ग्रथित घोड़े के दाँतों की माला विद्वेषण और उच्चाटन में, युद्ध में मरे हुये को छोड़कर अन्य मृत के और गर्दभ के दाँतों की माला मारण कर्म में प्रशस्त है।

अनामिका के मध्य पर्व पर माला को स्थापित कर शान्ति, स्तम्भन और वशीकरण के कर्मों में अँगूठे के अग्रभाग से उसे चलावे। विद्वेषण और उच्चाटन के कर्मों में तर्जनी और अंगुष्ठ के योग से तथा मारण में कनिष्ठा और अंगुष्ठ से माला चलावे। अथवा तंत्रानुसार यथाविधि वर्णमाला में जप करे। सभी प्रयोगों में दो हजार जप करे।

—(*)—

बीसवाँ उल्लास

चण्डी-पाठ

चण्डी पाठ में प्रथम, मध्यम और उत्तम चरितों के विनियोग तथा ध्यानादि निम्न प्रकार हैं—

विनियोग

ॐ प्रथम-चरितस्य ब्रह्मा ऋषिः । गायत्री छन्दः। महा-काली देवता । नन्दा शक्तिः । रक्त-दन्तिका बीजं। अग्निः तत्त्वं। महा-काली-प्रीत्यर्थं पाठे विनियोगः ।

ॐ मध्यम-चरितस्य विष्णुः ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । महा-लक्ष्मीः देवता। शाकम्भरी शक्तिः । दुर्गा बीजं। सूर्यः तत्त्वं। महा-लक्ष्मी-प्रीत्यर्थं पाठे विनियोगः ।

ॐ उत्तम-चरितस्य रुद्र ऋषिः । उष्णिक् छन्दः । महा-सरस्वती देवता। भीमा शक्तिः । भ्रामरी बीजं । वायुः तत्त्वं। महा-सरस्वती-प्रीत्यर्थं पाठे विनियोगः ।

ध्यान

(१) दश-वक्त्रा दश-भुजा, दश-पादाञ्जन-प्रभा।
विशालया राज-माता, त्रिंशल्लोचन-मालया।।
प्रस्फुरत्-कुल-दंष्ट्राभा, भीम-रूपा भयङ्करी।
खड्ग-वाण-गदा-शूल-शङ्ख-चक्र-भुशुण्डि-भृत्।।
परिघं कार्मुकं शीर्षं, निश्च्योतद्-रुधिरं दधौ।
मधु-कैटभयोर्युद्धे, यैषा सा तामसी शिवा।।

(२) श्वेताननाऽनिल-भुजा, सु-श्वेत-स्तन-मण्डला।
रक्त-मध्या रक्त-देहा, नील-जङ्घोरु-जानुका।।
चित्रानुलेपना कान्ता, सर्व-सौभाग्य-शालिनी ।

अक्ष-मालां तु मुशलं, वाणासिं कुलिशं गदाम् ।
चक्रं त्रिशूलं परशुं, शङ्ख-खेटक-पाशकम्।।
अष्टादश-भुजा पूज्या, सा सहस्र-भुजा रणे।
शान्त-दन्त-चर्म-पाशं, पान-पात्रं कमण्डलुम्।
अलंकृत-भुजामेभिरायुधैः परमेश्वरीम्।
स्मर्तव्या स्तुति-कालादौ, महिषासुर-मर्दिनी।
इत्येषा राजसी मूर्तिः, सर्व-देव,मयी मता।।

(३) गौरी-देहात् समुत्पन्ना, या सत्त्वैक-गुणाश्रया ।
साक्षात् सरस्वती प्रोक्ता, शुम्भासुर-निवर्हिणी।।
दधौ चाष्ट-भुजा वाणं, मुशलं शूलं चक्रकम् ।
शङ्ख-घण्टा-लाङ्गलं च, कार्मुकं च तथा परम्।।
ध्येया सा स्तुति-कालादौ, वधे शुम्भ-निशुम्भयोः।
मन्त्र – ॐ ऐं ह्रीं स्वाहा ॐ

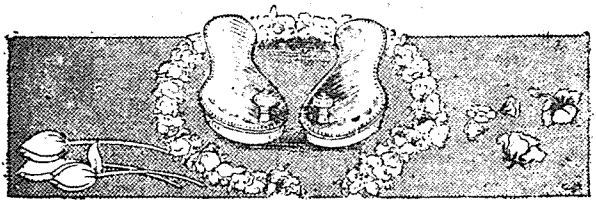

इक्कीसवाँ उल्लास

अवधूत-क्रम

चारों आश्रमों में अवधूत आश्रम श्रेष्ठ है। इसका साधन कुलयोग से होता है और इसमें मोक्ष मिलता है। ज्ञान के भाव से पूर्ण होने पर निज कौलिकी की अनुमति से उसकी पूजाकर कुण्डली शक्ति के विवर में यथाविधि योग का अभ्यास करे। इस अभ्यास से योग के सिद्ध होने पर साधक जरा-मरणादि दुःखों से रहित होकर भवसागर को पार करता है। अवधूत जो कुछ खाये-पिये, उसे कुण्डलिनी के मुख में प्रदान करे। ऐसा करने से वह सिद्धि को प्राप्त कर मुक्त होता है। उसका भिक्षा माँगना निज अर्थ में नहीं होता किन्तु कुण्डलिनी के तर्पण के लिये होता है। अवधूत आश्रम में साधक अपने को भैरव-रूप समझे और यह भावना करे—

भैरवोऽहं न चान्योऽस्मि, न चान्यो मत्-परः क्वचित्।
तन्त्र-मन्त्रार्चनं सर्वं, मयि जातं न चान्यथा।।
शिवोऽहं भैरवानन्दो, मत्तोऽहं कुल-नायकः।
पूर्णोऽहं भैरवश्चाहं, नित्यानन्दोऽहमव्ययः।।
निरञ्जन-स्वरूपोऽहं, निर्विकारो ह्यहं प्रभुः।
सर्व-शास्त्राभि-युक्तोऽहं, सर्व-मन्त्रार्थ-पारगः।।

लाल फूलों की माला और रक्त वस्त्र वह सदैव धारण करे तथा हेतुपान से सदा पूर्ण रह चाहे जैसे वेश में, चाहे जैसी गुप्त रीति से वह संसार में विचरण करे।

प्रकाशकीय

'कौलावली-निर्णय' शाक्तोपयोगी एक प्रसिद्ध निबन्ध-ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में शाक्तों के पूजा-क्रम का विस्तार के साथ प्रामाणिक रूप से वर्णन किया गया है। इसके कर्त्ता **श्री ज्ञानानन्द परमहंस** के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। जो कुछ ज्ञात हो सका है, उसके अनुसार यह निश्चय है कि उनकी लिखी और कोई पुस्तक नहीं है। तथापि केवल **'कौलावली-निर्णय'** ही उनके नाम को अमरत्व प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। **कौल-सम्प्रदाय** के साधक-वर्ग में यह ग्रन्थ बहुत समादृत है।

'तान्त्रिक टेक्स्ट' में जो **'कौलावली'** छपी थी, उसके लिए मुर्शिदाबाद के एक कौल गृहस्थ ने अपनी हस्त-लिखित पुस्तक देने की उदारता दिखाई थी, जिसका उपयोग सर जॉन वुडरफ ने किया था और इस प्रकार **'कौलावली'** का एक परिष्कृत संस्करण प्रकाशित हुआ था।

उक्त परिष्कृत संस्करण का ही हिन्दी-अनुवाद **पण्डित काशीप्रसाद शुक्ल शास्त्री जी** ने प्रस्तुत किया था, जो धारावाहिक रूप से **'चण्डी'** में छपा था। सं० २०११ वि० में इस पुस्तक का पहला संस्करण कल्याण मन्दिर द्वारा प्रकाशित हुआ। आज **'चण्डी'** की विशेषाङ्क-योजना के अन्तर्गत इसका दूसरा संस्करण प्रस्तुत हो रहा है। हमें विश्वास है कि **'कौलावली'** के इस दूसरे संस्करण से पाठकों का विशेष हित होगा।

भैरवाष्टमी २०५३ वि०

'चण्डी'-कार्यालय, प्रयागराज **ऋतशील शर्मा**

उपयोगी प्रकाशन

दी तन्त्रसार	२००-००
दी प्राण-तोषिणी तन्त्र	६०-००
दी कामाख्या तन्त्र	१५-००
दी पुरश्चरण-रसोल्लास	
दी कुल-चूड़ामणि तन्त्र	१५-००
दी कोकिलार्णव तन्त्र	१०-००
दी कुलार्णव तन्त्र	२५-००
दी भुवनेश्वरी रहस्य	५०-००
दी शाक्तानन्द तरङ्गिणी	१५-००
दी कौलावली निर्णय	२५-००